वार्षिक हिन्दी ई-पत्रिका

मृदा स्वास्थ्य आलोक

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान

नबीबाग, बैरसिया रोड, भोपाल- 462 038 (म.प्र.)

(आईएसओ 9001- 2015 प्रमाणित)

सरदार पटेल उत्कृष्ट भाकृअनुप संस्थान

सम्पादक मण्डल

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : डॉ. मनोरंजन मोहंती
निदेशक

प्रधान सम्पादक : डॉ. आशा साहू
वरिष्ठ वैज्ञानिक

सम्पादक सदस्य : डॉ. अवधेश कुमार त्रिपाठी
प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. राहुल मिश्रा
वैज्ञानिक
डॉ. अबिनाश दास
वैज्ञानिक
डॉ. धीरज कुमार
वैज्ञानिक

प्रकाशक एवं सम्पर्क सूत्र : भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान
नबीबाग, बैरसिया, रोड, भोपाल (म.प्र.) 462 038
दूरभाष : 0755-2730946, फैक्स : 0755-2777910

संदर्भ : आशा साहू, अवधेश कुमार त्रिपाठी, राहुल मिश्रा, अबिनाश दास एवं धीरज कुमार (2025) मृदा स्वास्थ्य आलोक, वार्षिक हिन्दी ई-पत्रिका, भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, नबीबाग़, बेरसिया रोड, भोपाल (मध्य प्रदेश) द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 96

मुद्रक : प्रिंट बाजार, प्लोट नं. 210
जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल - 462011

प्रकाशन वर्ष 2025

इस पत्रिका में प्रस्तुत लेखों में दिये गये विचार रचनाकारों के हैं। सम्पादक मण्डल उनके विचारों के लिए किसी भी प्रकार का उत्तरदायी नही है।

भा.कृ.अनु.प.- भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान
नबीबाग, बैरसिया रोड, भोपाल- 462038
ICAR-Indian Institute of Soil Science
NABIBAGH, BERASIA ROAD, BHOPAL– 462038

डॉ. मनोरंजन मोहंती/ Dr. Monoranjan Mohanty
FNAAS
निदेशक/ Director

निदेशक की कलम से

"मृदा स्वास्थ्य आलोक" के इस नवीनतम अंक में आपका स्वागत है, जो कृषि चुनौतियों और टिकाऊ समाधानों पर केंद्रित है। मुझे खुशी है कि विद्वान लेखकों ने मिट्टी के स्वास्थ्य, जल प्रबंधन और आधुनिक तकनीकों पर गहन विचार प्रस्तुत किए हैं।

यह अंक मिट्टी के जहरीलेपन, रासायनिक कीटनाशकों, भूमि क्षरण और उनके समाधानों पर प्रकाश डालता है। पराली प्रबंधन, शुष्क क्षेत्रों में जैविक खेती, वर्षा आधारित कृषि में संरक्षण कृषि, डीआरआईएस, फसल अवशेष प्रबंधन, जैव-गतिकीय विधियाँ और जीआईएस जैसे समकालीन विषयों को शामिल करना सराहनीय है। वर्मीकम्पोस्ट, प्राकृतिक खेती, बायोस्टिमुलेंट्स, जैविक खेती, द्वितीयक पोषक तत्व, पोषक वाटिका (बाड़ी), वैज्ञानिक खेती, फॉस्फोरस उपयोग दक्षता और समेकित पोषक तत्व प्रबंधन जैसे विषय किसानों के लिए नवीनतम ज्ञान प्रदान करेंगे।

मुझे विश्वास है कि यह अंक कृषि छात्रों, किसानों, वैज्ञानिकों और नीति निर्माताओं के लिए अत्यंत लाभकारी होगा और टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देगा।

इस उत्कृष्ट अंक के लिए संपादक टीम को हार्दिक बधाई।

शुभकामनाओं सहित

मनोरंजन
निदेशक

दिनाँक: 16 अप्रैल 2025
स्थान : भोपाल

भा.कृ.अनु.प.- भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान
नबीबाग, बैरसिया रोड, भोपाल- 462038
ICAR-Indian Institute of Soil Science
NABIBAGH, BERASIA ROAD, BHOPAL – 462038

सम्पादकीय

प्रिय पाठकों,

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान की वार्षिक हिंदी ई-पत्रिका "मृदा स्वास्थ्य आलोक" के इस नवीनतम अंक में हम आपका हार्दिक अभिनंदन करते हैं। यह अंक हमारे कृषि परिदृश्य में व्याप्त जटिल चुनौतियों और उनके स्थायी समाधानों की खोज पर केंद्रित है। संपादक मंडल को यह देखकर अत्यंत संतोष और प्रसन्नता हो रही है कि हमारे समर्पित लेखकों ने मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण से लेकर जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन और आधुनिक कृषि तकनीकों के अनुप्रयोग तक, विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर गहन शोध और विचार प्रस्तुत किए हैं।

आज, जब हमारा कृषि क्षेत्र मिट्टी में बढ़ते प्रदूषण और रासायनिक कीटनाशकों के अनियंत्रित उपयोग जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है, यह अत्यावश्यक है कि हम इन चुनौतियों का सामना करने और सुरक्षित, टिकाऊ विकल्पों को अपनाने की दिशा में सक्रिय रूप से कार्य करें। इस अंक में प्रकाशित शोध-आधारित लेख न केवल इन समस्याओं की गहरी पड़ताल करते हैं, बल्कि उनके प्रभावी और व्यावहारिक समाधान भी सुझाते हैं। भूमि का कटाव एक और महत्वपूर्ण चुनौती है जो हमारी उपजाऊ मिट्टी को निरंतर नष्ट कर रही है। इस अंक में भूमि क्षरण को प्रभावी ढंग से रोकने के उपायों पर विस्तृत चर्चा की गई है, जो हमारे किसान भाइयों और नीति निर्माताओं दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

हमें विशेष रूप से इस बात की प्रसन्नता है कि इस अंक में कुशल पराली प्रबंधन जैसे समकालीन और प्रासंगिक विषयों को प्रमुखता से शामिल किया गया है। कस्टम हायरिंग के माध्यम से पराली का टिकाऊ प्रबंधन न केवल हमारे पर्यावरण की सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है, बल्कि यह हमारे किसानों के लिए आय का एक अतिरिक्त और स्थायी स्रोत भी बन सकता है। थार मरुस्थल जैसे चुनौतीपूर्ण शुष्क क्षेत्रों में जैविक खेती के माध्यम से मृदा संरक्षण के प्रेरक प्रयासों पर प्रकाश डालना वास्तव में सराहनीय है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि सही तकनीकों और दृढ़ संकल्प के साथ, हम कठिन परिस्थितियों में भी टिकाऊ कृषि को सफलतापूर्वक बढ़ावा दे सकते हैं। वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में संरक्षण कृषि के महत्व और बागवानी फसलों की पोषक तत्वों की आवश्यकताओं का सटीक आकलन करने के लिए डीआरआई एस (DRIS) जैसी एकीकृत प्रणालियों पर प्रस्तुत लेख इस अंक की व्यावहारिक उपयोगिता को और अधिक बढ़ाते हैं। सूक्ष्मजीवों द्वारा फसल अवशेषों का कुशल प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण विषय पर भी इस अंक में गहराई से विचार किया गया है। यह हमें जल संरक्षण के महत्व और स्थायी कृषि तकनीकों को अपनाने की आवश्यकता को बेहतर ढंग से समझने में सहायक होगा। स्वावलंबी लघुधारक कृषक प्रणालियों के पुनर्निर्माण में जैव-गतिकीय विधियों का महत्वपूर्ण योगदान और कृषि क्षेत्र में भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) का बढ़ता हुआ उपयोग आधुनिक कृषि की दिशा में उठाए गए महत्वपूर्ण कदम हैं, जिन पर इस अंक में विस्तार से चर्चा की गई है।

इस अंक में वर्मीकम्पोस्ट और मृदा स्वास्थ्य के बीच गहरा संबंध, सोयाबीन की प्राकृतिक खेती के लाभकारी पहलू, आधुनिक कृषि में बायोस्टिमुलेंट्स की अपार क्षमता, जैविक खेती के सिद्धांतों और व्यवहार, गंधक जैसे द्वितीयक पोषक तत्वों का कृषि में महत्व, 'बाड़ी' (घरेलू उद्यान) की पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका, खीरा और पालक जैसी महत्वपूर्ण सब्जियों की वैज्ञानिक खेती की उन्नत तकनीकें, फॉस्फोरस उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए प्रभावी रणनीतियाँ और समेकित पोषक तत्व प्रबंधन के

भा.कृ.अनु.प.- भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान
नबीबाग, बैरसिया रोड, भोपाल- 462038
ICAR-Indian Institute of Soil Science
NABIBAGH, BERASIA ROAD, BHOPAL– 462038

समग्र लाभ जैसे विविध विषयों पर ज्ञानवर्धक लेख शामिल हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि ये लेख हमारे किसान भाइयों को नवीनतम तकनीकों और वैज्ञानिक ज्ञान से अवगत कराएंगे, जिससे वे अपनी कृषि पद्धतियों को और अधिक कुशल और टिकाऊ बना सकेंगे।

संपादक मंडल को दृढ़ विश्वास है कि इस अंक में प्रकाशित सभी लेख हमारे किसानों, वैज्ञानिकों, नीति निर्माताओं और कृषि क्षेत्र से जुड़े अन्य सभी हितधारकों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होंगे। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपको नई सोच के साथ टिकाऊ कृषि पद्धतियों को अपनाने के लिए प्रेरित करेगा और हमारे कृषि भविष्य को सुरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

हम आपके मूल्यवान सुझावों और प्रतिक्रियाओं का स्वागत करते हैं, जो हमें भविष्य में और भी बेहतर सामग्री प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करेंगे। भविष्य में भी हम कृषि विकास से जुड़े महत्वपूर्ण विषयों पर नवीनतम और उपयोगी जानकारी प्रदान करते रहेंगे।

कृषि उन्नति की शुभकामनाओं सहित,

संपादक मंडल
"मृदा स्वास्थ्य आलोक"
भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

अनुक्रमणिका

क्र.संख्या	अध्याय शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	मृदा में जहरीलापन के उपचार एवं कृषि में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग दिलीप कुमार वर्मा, रविन्द्र पंवार एवं उपेन्द्र सिंह चौधरी	1-7
2	भूमि अपरदन/क्षरण को रोकने हेतु प्रयास विश्वनाथ, अनुसुईया पंडा, सुशील कुमार सिंह, योगेश्वर सिंह, खुशबू रानी,अबिनाश दास एवं ज्योति कुमार ठाकुर	8-12
3	कस्टम हायरिंग के माध्यम से कुशल पराली प्रबंधन: कृषि अवशेषों के प्रबंधन के लिए एक टिकाऊ दृष्टिकोण अपर्णा जायसवाल,आराधना कुमारी, सुरेन्द्र कुमार राय एवं विनीता परते	13-16
4	थार मरुस्थल की शुष्क पारिस्थितिकी में जैविक खेती से मृदा संरक्षण महेश कुमार गौड़ एवं राजेश कुमार गोयल	17-21
5	वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में संरक्षण कृषि का प्रभाव ए.के. इंदौरिया, सुमंत कुंडू, जी. प्रतिभा, के. श्रीनिवास, एस. सुवना, के.वेंकटेश्वर राव, हेमंत साहू, मुन्ना लाल, मनीषा एवं विनोद कुमार सिंह	22-25
6	बागवानी पौधें के पोषक तत्वों की जरूरतों को निर्धारित करने के लिए निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली(डी आर आई एस) सीमा भारद्वाज, राहुल मिश्रा, धीरज कुमार एवं संजीब कुमार बेहरा	26-32
7	पश्चिमी राजस्थान के जल संसाधनों की वर्तमान स्थिति: चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ राजेश कुमार गोयल एवं महेश कुमार गौड़	33-36
8	सूक्ष्मजीवों द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन: एक स्थायी कृषि तकनीक आशा साहू, सुदेशना भट्टाचार्य, ज्योति कुमार ठाकुर, के भारती, असित मंडल, एस आर मोहंती, अबिनाश दास, एम एच देवी एवं ए के त्रिपाठी	37-40
9	स्वावलंबी लघुधारक कृषक प्रणालियों के पुनर्निर्माण में जैव-गतिकीय/ बायोडायनामिक (बीडी) विधियों का महत्व शिनोजी के सी, दिनेश कुमार यादव, रश्मी आई, संजय श्रीवास्तव, ज्योति कुमार ठाकुर, भारत प्रकाश मीना, गुरव प्रिया पांडुरंग एवं अभय ओ.शिराले	41-45
10	कृषि क्षेत्र में भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग निशा साहू, नारायण लाल एवं आशा साहू	46-48
11	वर्मीकम्पोस्ट और मृदा स्वास्थ्य असित मंडल, ज्योति कुमार ठाकुर, आशा साहू एवं भारत प्रकाश मीणा	49-56
12	सोयाबीन की प्राकृतिक खेती जे. के. ठाकुर, भारत प्रकाश मीणा, एन. रविशंकर, निशांत सिन्हा, प्रमोद झा, आर. इलानचेलियन, अबिनाश दास, असित मंडल एवं नीलेश रघुवंशी	57-59
13	आधुनिक कृषि में बायोस्टिमुलेंट्स की क्षमता का अनावरण: एक क्रांति आशा साहू, भारती के, राकेश परमार, सुदेशना भट्टाचार्य, निशा साहू, ज्योति कुमार ठाकुर, ज्योति समोता एवं एस आर मोहंती	60-63

14	**होमा जैविक खेती** शिनोजी के. सी., आशिष मुराई, संजय श्रीवास्तव, रश्मि आई., रेनू बालकृष्णन, प्रिया गुरव, भारत प्रकाश मीणा, दिनेश कुमार यादव एवं अभय ओमप्रकाश शिराले	64-66
15	**गंधक - फसल उत्पादन के लिए प्राथमिक महत्व का एक द्वितीयक पोषक तत्व** राहुल मिश्रा, सीमा भारद्वाज, निशांत कुमार सिन्हा, धीरज कुमार, जीतेंद्र कुमार एवं संजीब कुमार बेहरा	67-72
16	**बाड़ी: किसानों की आमदनी का साधन और स्वास्थ्य के लिए पोषण** नारायण लाल, निशा साहू, दिनेश कुमार यादव, एम. वसन्दा कुमार, प्रभात त्रिपाठी, आर. इलनचेलियन एवं आर. के. सिंह	73-76
17	**खीरा उत्पादन की वैज्ञानिक खेती** कुन्ती बंजारे, हेमलता निराला, प्रतिभा सिंह, नारायण लाल एवं रेवेन्द्र सिंह वर्मा	77-79
18	**पालक की वैज्ञानिक खेती** गोविंद षिऊरकर, नारायण लाल एवं गरिमा दीवान	80-84
19	**फॉस्फोरस उपयोग दक्षता बढ़ाने की रणनीतियाँ** धीरज कुमार, निशांत कुमार सिन्हा, जितेंद्र कुमार, आरएच वंजारी, सीमा भारद्वाज, राहुल मिश्रा, आशा साहू एवं अनिल नागवंशी	85-89
20	**समेकित पोषक तत्व प्रबंधन** कस्तूरिकासेन बेऊरा, अमित कुमार प्रधान एवं सागर एन. इंगले	90-96

मृदा में जहरीलापन के उपचार एवं कृषि में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग

दिलीप कुमार वर्मा, रविन्द्र पंवार एवं उपेन्द्र सिंह चौधरी

भाकृअनुप - भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय केन्द्र, इन्दौर

कृषि में बढ़ते रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग एवं उससे उत्पन्न प्रदूषण मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए चिंता का विषय है। मृदा में रासायनिक कीटनाशकों से उत्पन्न प्रदूषण एक बड़ी चुनौती बना हुआ है जो एक स्वस्थ वातावरण स्थापित करने में बहुत बड़ी बाधा है। अतः इस समस्या के समाधान की तत्काल आवश्यकता है। रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभाव एवं उससे उत्पन्न व्याधियों को गहराई से समझने के पूर्व हमें यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि रासायनिक कीटनाशक क्या होते हैं एवं उनके प्रयोग की हमें आवश्यकता क्यों पड़ी। कीटनाशक रासायनिक पदार्थों का ऐसा मिश्रण होता है, जो कीड़े-मकोड़ों से होने वाले दुष्प्रभावों को कम करने, उन्हें मारने या उनसे बचाने के लिए किया जाता है। कीटनाशक शब्द बहुत सारे यौगिकों की एक विस्तृत श्रृंखला है जिसमें कीटमार, कवकनाशी, शाकनाशी, कृन्तकनाशक, गोल कृमिनाशी इत्यादि शामिल हैं। इसका प्रयोग कृषि क्षेत्र में पेड़-पौधों को विभिन्न रोगों से बचाने एवं फसलों के उत्पादन को अधिकतम करने के लिए बहुतायत से किया जाता है। विभिन्न मानव जनित गतिविधियां एवं उससे उत्पन्न होने वाले हानिकारक तत्वों के कारण मृदा प्रदूषण एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या बन चुका है, जिसमें विशेष रूप से विकासशील या अविकसित देशों में इसे सतत् विकास के लिये एक प्रमुख अवरोध माना जाता है। मानव द्वारा खतरनाक रसायनों के व्यापक प्रयोग के कारण मृदा की गुणवत्ता एवं उर्वरता दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही है एवं उसमें खतरनाक रासायनों का स्तर निरंतर बढ़ता जा रहा है।

भारत में कीटनाशकों का उत्पादन एवं प्रयोग:-

भारत में कीटनाशकों का उत्पादन 1952 में कोलकाता के पास बी.एच.सी. एवं डी.डी.टी. उत्पादन के लिए एक संयंत्र की स्थापना के साथ शुरू हुआ था, वर्तमान में भारत, चीन के बाद एशिया में कीटनाशकों का दूसरा सबसे बड़ा निर्माता है और वैश्विक स्तर पर बारहवें स्थान पर है। पूर्व के वर्षों में, भारत में कीटनाशकों के उत्पादन में दोगुना से ज्यादा वृद्धि हुई है जिसमें 2018 में लगभग 90,000 मीट्रिक टन एवं 2019 में बढ़कर 102,240 मीट्रिक टन उत्पादन हुआ। बढ़ते रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग एवं उत्पादन न केवल मृदा को प्रदूषित कर रहा है बल्कि पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा भी उत्पन्न कर रहा है। भारत में उत्पादित होने वाले विभिन्न कीटनाशकों को उनके सत्रवार तालिका 1 में दर्शाया गया है।

भारत में प्रयोग होने वाले प्रमुख कीटनाशक:-

भारत में प्रयोग होने वाले कीटनाशकों को उनकी रासायनिक प्रकृति के आधार पर पांच प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है।

1. ऑरगेनोक्लोराइड्स(Organochlorides)- ये अणु प्रतिक्लोरीन की कई परमाणुओं के साथ मिलकर बने कार्बनिक यौगिक हैं। डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, डी एल्ड्रिन और एनड्रीन ये सब क्लोरीन कीटनाशक हैं। डी.डी.टी सबसे पुराना और सबसे लोकप्रिय कृत्रिम कीटनाशक है। बी.एच.सी. अकेले कुल कीटनाशक की मात्रा का 50 % कीटनाशक है। एल्ड्रिन का प्रयोग इमारतों की नींव में दीमक के हमलों को रोकने के लिए किया जाता है। ये सभी रसायन लिपोफिलिक हैं और ये जानवरों की वसा ऊतकों में जाकर जैव संचित हो जाते हैं।

2. ओर्गेनोफोस्फेट्स(Organophosphates) - मैलाथियॉन का प्रयोग मलेरिया रोधी योजनाओं में किया जाता था और पैराथियॉनफोस्फोरिक एसिड के साथ मिलकर बना कार्बनिक यौगिकों के यौगिक हैं। फेनिट्रोत्थियॉनलाथियॉन और पैराथियॉन तंत्रिका तंत्र पर बहुत प्रभावकारी होते हैं।

3. कार्बमिट्स(Carbamates) - ये एसिटीकॉलिन (cetylcholine) के समान एक रासायनिक संरचना वाले यौगिक हैं। कार्बोफ्युरेन, प्रोपोक्सर कामिट कीटनाशक के उदाहरण हैं।

4. पाइरेथ्रोइडस(Pyrethroids)- ये पाइरेथ्रिन (pyrethin) से निकले संश्लेषिक उत्पाद हैं, जो गुलदाउदी से निकला एक सयंत्र रासायनिक है।

5. ट्राइयजिन्स(Triazines) - ये यूरिया से उत्पन्न हुए सिमाजीन(Simazin), अल्ट्राजीन (Altrazin) जैसे यौगिक हैं। ये प्रभावशाली शाकनाशी हैं जिन्हें चाय, तंबाकू और कपास की निराई के खिलाफ इस्तेमाल किया जाता है।

चित्र:1 हानिकारक रसायनों के उपयोग से मृदा में जहरीलापन

तालिका-1 भारत में 2017-2018 से 2018-2019 तक प्रमुख कीटनाशकों का उत्पादन

क्र. संख्या	कीटनाशक	उत्पादन सत्रवार: इकाई (एम.टी.)	
		2017-18	2018-19
1	ऐसीफेट	18271	19633
2	अल्फामेथिन	320	344
3	क्लोरपायरीफॉस	7984	7143
4	सायपरमेथरिन	8246	10962
5	डीडीटी	1265	1366
6	डीडीवीपी	8127	9136
7	डेल्टामेथ्रिन	551	682
8	डयाकोफाल	77	52
9	डाईमेथोएट	1184	1257
10	ईंथिऑन	2381	1318

11	ईथोफुमीसेट	1287	1042
12	फेनवलेरेट	741	695
13	ईमीडाक्लोरोप्रिड	344	100
14	लैम्ब्डासाईहालोथिन	1142	622
15	मालाथिओन	3293	4390
16	मोनोक्रोटोफॉस	6500	5298
17	पेंडीमैथैलीन	3780	2822
18	परमेथिन	1525	1860
19	फेनथोएट	1323	1534
20	फोरेट	7016	5847
21	फोस्फेमिडोन	112	22
22	प्रोफेनोफोसटेक्निकल	9945	12452
23	क्वीनलफास	1184	885
24	टेम्फोस (एबेट)	100	77
25	विएमेथोक्समटेक्निकल	3282	5569
26	ट्रायाजोफास	1543	886
27	ट्रिक्लोपरिएसिड	153	125
28	केप्टाफोल	1763	1931
29	कार्बेन्डजिम	27	21
30	हेक्सकोनाजोल	588	501
31	मैंकोजेब	70245	69331
32	मैटकोनाजोल	400	336
33	जीराम	720	763
34	24-डी	25830	24236
35	एट्राजिन	2249	1477
36	ब्यूटाक्लोर 37 डाईयुरोन	3262	3618
37	ग्लाईफोसेट	6294	6684
38	मेट्रिब्यूजिन	882	1919
39	प्रेतीलाक्लोरटेक्निकल	3597	3626
40	एल्युमीनियमफास्फाइड	4771	4913
41	जिंकफास्फाइड	1395	1260
	योग	**212699**	**216703**

तालिका-2 राज्य / केंद्र शासित प्रदेश में रासायनिक कीटनाशकों की अनुमानित मांग							
		इकाईः मि. टन					
क्र.संख्या	राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	2018-19	2019-20	2020-21	2021-22	2022-23	2023-24 के लिए संम्भावित मांग
1	आँध्रप्रदेश	3950	3850	3850	2750	2650	2600
2	बिहार	1147	1250	1295	1250	1295	1300
3	छत्तीसगढ़	5642	1672	1693	1740	1775	2285
4	गोवा	29	31	31	36	37	37
5	गुजरात	2103	1986	1967	2246	2463	2275
6	हरयाणा	4200	4400	4200	4220	4220	4215
7	हिमाचल प्रदेश	628	1256	NR	279	470	487
8	झारखंड	625	710	710	710	710	775
9	कर्नाटिक	1900	1900	1900	1900	2100	2100
10	केरल	961	821	588	431	479	454
11	मध्य प्रदेश	650	650	777	829	845	539
12	महाराष्ट्र	15704	14396	14396	15881	15457	8718
13	ओड़िसा	1189	1210	1290	1288	1315	1339
14	पंजाब	5765	5765	5700	5350	6036	5484
15	राजस्थान	2330	2112	2590	2450	2200	2200
16	तमिलनाडु	2122	1863	2046	2064	2085	2053
17	तेलंगाना	5642	5689	6535	6556	6556	6700
18	उतरप्रदेश	11031	11116	11850	11795	11801	11851
19	उत्तराखंड	256	280	151	287	150	151
20	पश्चिम बंगाल	4125	4400	4400	4400	4068	4200
	कुल	**69999**	**65358**	**65970**	**66462**	**66712**	**59762**

पूर्वोत्तर							
21	अरुणाचल प्रदेश	5	5	2	0.40	NR	NR
22	असम	347	410	420	474	455	472
23	मणिपुर	NR	27	27	NR	NR	NR
24	मेघालय	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य
25	मिजोरम	171	171	NR	189	199	192
26	नागालैंड	28	27	51	63	NR	NR
27	सिक्कम	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य	जैविक राज्य
28	त्रिपुरा	NR	482	NR	NR	NR	NR
	कुल	550	1122	500	727	654	664
केंद्र शासित प्रदेश							
29	अंडमान निकोबार द्वीप	NR	NR	NR	NR	2	1
30	चंडीगढ़	NR	NR	NR	NR	NR	NR
31	दादरा और नागर हवेली , दमन और दीव	NR	NR	NR	NR	NR	NR
32	दिल्ली	130	NR	NR	NR	NR	NR
33	जम्मू और कश्मीर	2545	2685	4199	4247	400	404
34	लद्दाख	NR	NR	NR	NR	NR	NR
35	लक्ष्य द्वीप	NR	NR	NR	NR	NR	NR
36	पुदुचेरी	48	46	NR	NR	NR	NR
कुल		**2724**	**2731**	**4199**	**4247**	**402**	**405**
सम्पूर्ण योग		**73273**	**69211**	**70668**	**71435**	**67768**	**60831**

स्रोत: रबी और खरीफ मौसमों के लिए इनपुट (पौध संरक्षण) पर राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के क्षेत्रीय सम्मेलन

रासायनिक कीटनाशकों के हानिकारक प्रभाव:-

फसलों में उत्पन्न होने वाले जनित कीट रोग एवं खरपतवार को खत्म करने और फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग हमारे देश में अंधाधुंध हो रहा है। परंतु इन रोगों के रोगाणुओं की कम से कम 5 फीसदी संख्याऐ सी होती है जो इन खतरनाक रासायनिक कीटनाशकों के प्रभाव से बच जाती है और इनका सामना करने की प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न कर लेती है। ऐसे प्रतिरोधी कीट धीरे-धीरे अपनी इस क्षमता वाली नई पीढ़ी को जन्म देने लगते हैं जिससे उन पर इन खतरनाक रासायनिक कीटनाशकों का प्रभाव कम पड़ता है और फिर इन्हें खत्म करने के लिए ज्यादा जहरीले रसायनों का निर्माण करना पड़ता है। इस स्थिति का दूसरा पहलू यह भी है, कि जब किसान अपने खेत में उगने वाली फसलों पर इन जहरीले रसायनों का छिड़काव करता है तो इस के घातक तत्व, फल, सब्जियों एवं उनके बीजों में प्रवेश कर जाते हैं। फिर इन रसायनों की मात्रा, भूमि की मिट्टी, नदी के पानी, वातावरण की हवा में भी जारी रहती है। यह भी कहा जा सकता है कि मानव विनाशी खतरनाक रसायन सर्वव्यापी हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में जो भो जल हम ग्रहण करते है, जो फल हम खाते हैं, पानी पीते हैं, साँस लेते हैं, इन सभी के जरिए वास्तव में हम अनजाने में जहर का सेवन करते हैं। यह जहर हमारे शरीर के उत्सर्जन तंत्र जैसे पसीने, स्वास, मल या मूत्र इत्यादि रास्तों से हमारे शरीर से बाहर नहीं निकल पाता है अपितु शरीर की कोशिकाओं में फैलकर लाइलाज रोगों को जन्म देता है। आरम्भ में हमें सामान्य लक्षणों जैसे सिर दर्द, त्वचा समस्या, बुखार चक्कर आना इत्यादि प्रकट होते है परन्तु बाद में भांति-भांति के खतरनाक लक्षण कैंसर में परिवर्तित हो जाते है। श्री निवासनराव एवं अन्य (2007) द्वारा किये गए अध्ययन इस बात के साक्ष्य उपलब्ध करवाते है कि दक्षिण भारत के वारंगल जिले में हर साल एक हजार से अधिक कीटनाशक विषाक्तता के मामले सामने आ रहे है एवं इससे सैकड़ों मौतें होती है। यह रसायन वातावरण की ओजोन परत में क्षय का सबसे बड़ा कारण है जिसकी वजह से कम से कम 4 लाख व्यक्ति त्वचा कैंसर से प्रभावित हुए और मोतियाबिंद के मामले डेढ़ करोड़ बढ़ गये। हमारे देश में ऐसे रासायनिक कीटनाशकों का व्यापक प्रयोग है जो पूरी दुनिया में प्रतिबंधित हैं जैसे डी.डी.टी, बी.एच.सी, एल्ड्रान, क्लोसडेन, एड्रीन, मिथाइल पैराथियोन, टोक्साफेन, हेप्टाक्लोर तथा लिण्डेन। इसका परिणाम यह है कि एक औसत भारतीय अपने दैनिक आहार में स्वादिष्ट भोजन के साथ 0.27 मिलीग्राम डी.डी.टी भी अपने पेट में डालता है जिसके फलस्वरूप औसत भारतीयों के शरीर के ऊतकों में एकत्रित हुये डी.डी.टी का स्तर 12.8 से 31 पीपीएम यानी विश्व में सबसे ऊंचा है। इसी तरह गेहूं में कीटनाशक का स्तर 1.6 से 17.4 पीपीएम, चावल में 0.8 से 16.4 पी.पी.एम, दालों में 2.9 से 16.9 पी.पी.एम, मूंगफली में 3.0 से 19.1 पीपीएम, साग-सब्जी में 5.00 और आलू में 68.5 पीपीएम तक पाया गया है। रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग से उत्पन्न व्याधियों का चित्रण नीचे चित्र संख्या 2 में सुस्पष्ट दर्शाया गया है।

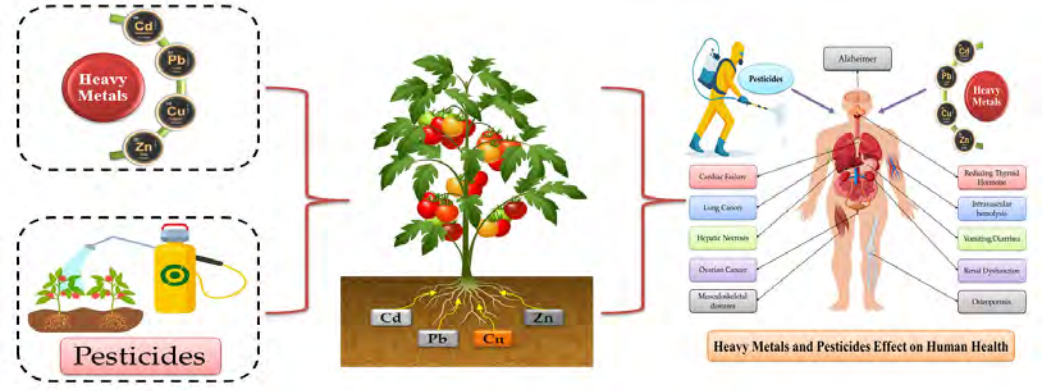

चित्र:2 रासायनिक कीटनाशकों के लगातार उपयोग से होने वाली हानि

रासायनिक कीटनाशकों से प्रदूषित मृदा के उपचार की विधियाँ:-

पिछले कुछ वर्षों में, रासायनिक कीटनाशक दूषित मिट्टी के स्थानों को साफ करने या पुनःस्थापित करने के लिए विभिन्न उपचारात्मक दृष्टिकोण विकसित किए गए हैं, इन तकनीकों को पाँच प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैः भौतिक, रासायनिक, विधुत , थर्मल और जैविक उपचार।

- जमावट
- मृदाकैपिंग
- ठोसकरण
- जैव एवं पादप उपचार
- स्थिरीकरण
- मृदा इनकैप्सुलेशन
- इलेक्ट्रो-काइनेटिक निष्कर्षण
- विट्रीफिकेशान
- मृदा धुलाई
- आयन विनिमय
- रासायनिक ऑक्सीकरण
- फोटो कैटलिसिस

रासायनिक कीटनाशकों से प्रदूषित मृदा प्रदूषण को कम करने हेतु यद्यपि कई तकनीकें विकसित की जा चुकी हैं, तथापि अत्यधिक महंगे तथा कभी-कभी प्रायोगिक रूप से उपयोगी न होने के कारण इनको प्रत्येक स्थान पर प्रयोग में नहीं लाया जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में सूक्ष्मजीवों एवं पौधों के प्रयोग द्वारा इन धातुओं का निस्तारण एक सरल, सस्ती और आसान प्रक्रिया सिद्ध हो सकती है। विशेष कर पर्यावरणीय दृष्टिकोण से यह एक अनुकूल विधि है। इसमें अतिरिक्त हानिकारक उत्पादों की संभावना भी काफी कम होती है। अतः स्वाभाविक है कि खेती के कीटनाशकों के सन्दर्भ में भी पारम्परिक उपायों से बेहतर विकल्प कोई और नहीं हो सकता है।

उपसंहार:-

जैविक नियंत्रण विधि एवं जैविक कीटनाशक का प्रयोग कीट जनित रोगों को कम या खत्म करने का आसान एवं सस्ता विकल्प हो सकता है। इनके योग से मृदा की उर्वरता भी बढ़ती है। यह हमारे अपने आस-पास के प्राकृतिक संसाधनों द्वारा अपने हाथों से तैयार किया जा सकता है। इनसे किसानों की बाजार पर निर्भरता भी खत्म होती है। किसानों द्वारा सरलता से प्रयोग किया जा सकता है जो कुछ सरल एवं जांचे परखे तरीकों का प्रयोग कर खेती में रोगों व कीटों से होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम कर सकते हैं।

भूमि अपरदन/क्षरण को रोकने हेतु प्रयास

विश्वनाथ[1], अनुसुईया पंडा[1], सुशील कुमार सिंह[1], योगेश्वर सिंह[1], खुशबू रानी[2], अबिनाश दास[2] एवं ज्योति कुमार ठाकुर[2]

[1]रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी
[2]भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

भूमि की ऊपरी सतह पर कृषि योग्य मिट्टी की 10 से 20 सेंमी परत को हम मृदा कहते हैं। यह पौधों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों का भंडार है। प्रतिवर्ष कुछ प्राकृतिक बल मुख्य रूप से जल एवं वायु द्वारा मृदा की ऊपरी परत बहकर या उड़कर दूसरे स्थानों पर स्थानांतरित होती रहती हैं। इसके साथ ही पेड़-पौधे जितना पोषक पदार्थ मृदा से अपने भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, उसके कई गुना अधिक पोषक पदार्थ मुदा से बहकर या उड़कर भी नष्ट हो जाती है। मृदा के कणों का अपने स्थान से हटने की क्रिया चाहे वो प्राकृतिक रूप से हो या कृत्रिम रूप से हो, मृदा अपरदन कहलाती है।अधिकांश परिस्थितियों में जल परिवहन का कारक होता है। लेकिन यह कार्य हवा द्वारा भी होता है। भारत में लगभग 150 मिलियन हैक्टेयर भूमि कटाव की भयानक समस्याओं से पीड़ित है। इसमें से 111.30 मिलियन हेक्टेयर जल से अपरदन तथा 39 मिलियन हैक्टेयर वायु कटाव से ग्रसित है। मृदा अपरदन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है परन्तु वर्त्तमान समय में यह अन्धाधुंध मानवीय गतिविधियों जैसे की कृषि और वनों की कटाई के कारण तेजी से बढ़ रही है।

भूमि क्षरण के कारण

1. **मृदा के ऊपर वनस्पतियों का अभाव :** वनस्पतियों से आच्छादित मृदा में अपरदन कम होता है। इनकी जड़ें मृदा के कणों को बांधे रखती हैं तथा जल के बहाव को कम कर देती हैं । किसान अपनी फसलें मिट्टी पर उगाते हैं और उनके मरने के बाद उनके अवशेष मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ में योगदान करते हैं। मृदा में कार्बनिक पदार्थ का अनुपात बढ़ाने से मृदा सरंचना में सुधार आता है। मृदा जैविक कार्बन मिट्टी की उर्वरता के लिए एक आवश्यक रीढ़ की हड्डी के रूप में कार्य करता है।

2. **खेतों का असमतल होना:** मृदा का समतल न होना त्वरित मृदा अपरदन का एक अन्य कारण है। शहरीकरण के परिणामस्वरूप अक्सर तेजी से वनों की कटाई होती है, जिससे नई उजागर भूमि बंजर और वनस्पति से रहित हो जाती है, और ढलान असमान हो जाती है। इसी तरह, खेती के काम और मशीनीकृत जुताई से भूमि की सतह उबड़-खाबड़ हो सकती है। यह असमान भूभाग पानी को ऊपर से नीचे तक तेजी से प्रवाहित करने में मदद करता है, जिससे ऊपरी मिट्टी की परतें बह जाती हैं।खेतों की असमतल सतह के कारण बारिश का पानी ऊपरी हिस्सों से निचले हिस्सों की ओर तेजी से बहता है, जिससे मृदा अपरदन बढ़ जाता है।

3. **जगलों की कटाईः** जगलों की लगातार अंधाधुंध कटाई मिट्टी के अपरदन के सबसे बड़े कारणों में से एक है। जब लकड़ी, कृषि या शहरीकरण के लिए जंगलों को काटा जाता है, तो मिट्टी, पत्तियों और जड़ों के सुरक्षात्मक आवरण को खो देती है जो इसे जगह पर बनाए रखते हैं। पेड़ों के बिना, बारिश का पानी सीधे मिट्टी पर पड़ता है, जिससे यह ढीली हो जाती है और बह जाती है।

4. **खेतों में पशुओं का अधिक चरना (अतिचराई) :** गाय, बकरी और भेड़ जैसे पशु चारागाहों पर अत्यधिक चरते हैं, घास और पौधों को इतनी जल्दी खा जाते हैं कि वे फिर से उग नहीं पाते। इससे वनस्पति आवरण कम हो जाता है और मिट्टी हवा और पानी के जरिए बहना शुरू कर देती है। अत्यधिक चराई से मिट्टी भी कठोरऔरठोस हो जाती है, जिससे पानी का अंदर जाना मुश्किल हो जाता है और अपवाह बढ़ जाता है।

5. **अनुचित कृषि पद्धतियाँ :** अनुचित खेती के तरीके, जैसे अत्यधिक जुताई, कवर फसलों की कमी और उच्च फसल तीव्रता मिट्टी की प्राकृतिक संरचना को बिगाड़ते हैं। एक ही फसल (मोनोक्रॉपिंग) बोना या फसलों के बीच खेत को खाली छोड़ना भी मिट्टी को कमजोर करता है। गलत सिंचाई पद्धतियों से पानी भराव (जलभराव) या पानी का तेज बहाव (रनऑफ) हो सकता है, जिससे मिट्टी का कटाव बढ़ जाता है।

भूमि क्षरण मुख्यत: दो प्रकार से होता है

1. प्राकृतिक क्षरण
2. त्वरित क्षरण

प्राकृतिक क्षरण: वनस्पति से ढकी हुई मृदा का प्राकृतिक रूप से हवा और जल द्वारा लगातार और धीरे धीरे क्षरण को प्राकृतिक क्षरण कहते हैं। यह क्षरण मृदा निर्माण तथा मृदा विनाश की क्रियाओं में सदैव साम्य रखता है। इससे कोई विशेष हानि नहीं होती है। इस क्षरण को मनुष्य द्वारा रोका नहीं जा सकता है।

त्वरित क्षरण: त्वरित अपरदन उस समय होता है जब पृथ्वी का सुरक्षात्मक वनस्पति आवरण नष्ट हो जाता है। ऐसा प्राकृतिक कारणों जैसे बाढ़ अथवा मानवीय गतिविधियों के कारण होता है। खेती करना त्वरित अपरदन के लिए उत्तरदायी प्रमुख मानवीय गतिविध्यों में से एक है। जिस भूमि पर खेती की जाती है, वह वायु, जल जैसे प्राकृतिक कारणों के प्रति अतिसंवेदनशील होती है। मानव गतिविधियों जल एवं वायु द्वारा होने वाले उपरी मृदा को हटाने की गति में इजाफा करते है। त्वरित अपरदन की दर एवं मात्रा प्राकृतिक भूवैज्ञानिक मृदा अपरदन की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

त्वरित क्षरण मुख्यत: दो प्रकार से होता है

1. वायु द्वारा क्षरण
2. जल द्वारा क्षरण

वायु द्वारा क्षरण

जल द्वारा क्षरण

जल द्वारा क्षरण: आवरण रहित नग्न भूमि पर जब वर्षा की बूंदे गिरती है तो मृदा कण तीतर- बीतर हो कर बिखर जाते है और पानी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। जिससे खेत की मिट्टी का उपजाऊपन जल के साथ चला जाता है।

वायु द्वारा क्षरण: तेज हवा या आंधी से मृदा कण एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। यह क्षरण शुष्क

एवं अर्ध्द शुष्क इलाको में ज्यादा होता हैं। जहाँ पर वनस्पति नही के बराबर होती है। यह अधिकतर मार्च से जून तक हवाओ के चलने से अधिक होता है। इन इलाकों में यह समस्या अनियंत्रित व अत्यधिक पशुओ की चराई व कृषि के गलत तरीके अपनाने से बढ़ती जा रही है। इस अपरदन से लाखों टन उपजाऊ मिट्टी उड़कर बाहर चली जाती है और मृदा उर्वरता का ह्रास हो जाता है।

मृदा क्षरण के प्रभाव

- **भूमि निम्नीकरण :** यह भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण है, जिसके परिणामस्वरूप उपजाऊ भूमि नष्ट हो जाती है। कटाव, संदूषण और प्रदूषण कृषि भूमि की गुणवत्ता को कम कर देते हैं, जिससे यह कम उत्पादक हो जाती है। दुनिया की लगभग 40% कृषि भूमि में गंभीर गिरावट देखी गई है।
- **सूखा एवं शुष्कता :** मृदा क्षरण, शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में सूखे और शुष्कता को बढ़ाता है। अत्यधिक चराई, खराब जुताई के तरीकों और वनों की कटाई मरुस्थलीकरण को बढ़ावा देती है, जिससे शुष्क और जल की कमी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे जैव विविधता को भी नुकसान पहुँचता है।
- **कृषियोग्य भूमि की हानि :** इससे कृषि योग्य भूमि का काफी नुकसान होता है। मिट्टी की प्राकृतिक संरचना के क्षरण और क्षति के परिणामस्वरूप उत्पादक कृषि भूमि का नुकसान होता है। विश्व की लगभग 40% कृषि भूमि मृदा क्षरण से प्रभावित हुई है।
- **बाढ़ में वृद्धिः** इससे मिट्टी की जल सोखने की क्षमता कम हो जाती है, जिससे सतही अपवाह बढ़ जाता है और बार-बार बाढ़ आती है। वर्तमान में मिट्टी की प्राकृतिक जल-धारण क्षमता कम हो गई है, जिससे भारी वर्षा की घटनाओं का प्रभाव बढ़ गया है।
- **जलमार्गों का प्रदूषित और अवरुद्ध होना :** मृदा अपरदन कृषि उर्वरकों और कीटनाशकों के साथ-साथ तलछट को जलमार्गों में ले जाता है, जिससे नदियों में प्रदूषण बढ़ता है। कृषि पद्धतियों से निकलने वाले प्रदूषक जलीय पारिस्थितिक तंत्र को नुकसान पहुँचा सकते हैं, जल की उपलब्धता को सीमित कर सकते हैं और इन जल स्रोतों पर निर्भर मानव आबादी को भी प्रभावित कर सकते है

मृदा क्षरण को नियंत्रित करने के तरीके –

1. **वनोन्मूलन को कम करनाः** वनों की कटाई को कम करने और स्थायी वन प्रबंधन प्रथाओं को बढ़ावा देने के प्रयास किये जाने चाहिए। पुनर्वनीकरण और वन संरक्षण कार्यक्रम वनस्पति आवरण को बहाल करने और मिट्टी के क्षरण को रोकने में सहायता कर सकते हैं।

2. **भूमि पुनर्ग्रहणः** भूमि पुनर्ग्रहण में मिट्टी के खोए हुए कार्बनिक पदार्थ और आवश्यक खनिजों को पुनर्ग्रहण करना शामिल है। इसे निम्नीकृत मिट्टी में पौधों के अवशेषों को संयोजित, रेंज प्रबंधन में सुधार करने और पुनर्ग्रहण परियोजनाओं के माध्यम से लवणयुक्त मिट्टी में कमी लाना जैसी गतिविधियों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

3. **लवणता को रोकना:** सिंचाई को कम करने, नमक सहनशील फसलें लगाने और सिंचाई दक्षता में सुधार जैसे कार्यों के माध्यम से लवणीकरण को रोकना पुनर्ग्रहण परियोजनाओं की तुलना में अधिक लागत प्रभावी है। मृदा की गुणवत्ता और उर्वरता बनाए रखने के लिए रोकथाम महत्त्वपूर्ण है।

4. **संरक्षण जुताई:** मिट्टी की प्राकृतिक स्थिति में परिवर्तन को कम करने वाली संरक्षण जुताई तकनीकों का अभ्यास करने से मिट्टी के क्षरण को रोकने में मदद मिल सकती है। फसल के अवशेषों को सतह पर छोड़ने और गहरी जुताई से बचने से मिट्टी को कटाव से बचाया जा सकता है और इसकी उत्पादकता को बनाए रखा जा सकता है।

5. **स्ट्रिप क्रॉपिंग :** ऐसी फसलें, जो जड़ों को कमजोर करती हैं, जिन्हें दूर-दूर लगाया जाना होता है, उनमें क्षरण होने की बहुत ज्यादा संभावना होती है। इन्हें स्ट्रिप्स या पट्टियों में रोपें, स्ट्रिप्स को एक कटाव प्रतिरोधी फसल जैसे कि घनी घास या फलियां के स्ट्रिप्स के साथ बदल-बदलकर लगाएँ।

6. **कवर क्रॉपिंग:** कवर की हुई मिट्टी के मुकाबले खाली पड़ी मिट्टी के क्षरण होने की ज्यादा संभावना रहती है। अपनी फसलें काटने के बाद, मिट्टी के अवशेषों को मल्च की तरह छोड़ दें। तथा खेत की उत्पादकता को बनाए भी रखा जा सकता है।

7. **गहरी नालियों से निचली पहाड़ी के बहाव को नियंत्रित करें:** जैसे कि बहाव पूरी जमीन के ऊपर चलता रहता है, इसलिए ये संकरी जगहों पर केन्द्रित होता है। ढलान की जिस जगह पर ये केन्द्रित बहाव पहुंचता है, उस जगह पर क्षरण होने की संभावना विशेष रूप से ज्यादा रहती है। आप चाहें तो पत्थर वाली गहरी नली या लाइन चेनल नालीदार भी बना सकते हैं, जो पानी को एक सेफ ड्रेनेज सिस्टम तक लेकर जाएँ।

8. **हिलसाइड को टेरेस या छत में बदल दें:** सबसे ज्यादा सीधे धलान पर खेती करना बेहद मुश्किल होता है। इसलिए स्लोप के ऊपर दीवार बनाते हुए उस हिल को एक टेरेस में बदल दें। दीवारों के बीच में, मिट्टी के लेवल को क्षरण प्रतिरोशी एरिया बनाने के लिए ऊंचा उठा लें।

निष्कर्ष

मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण और पर्यावरणीय क्षरण को रोकने के लिए प्रभावी मृदा क्षरण प्रबंधन महत्वपूर्ण है। समोच्च जुताई, कवर क्रॉपिंग और सीढ़ी जैसी टिकाऊ प्रथाओं को लागू करने से कटाव को कम करने में मदद मिल सकती है। इसके अतिरिक्त, जल चैनलों के किनारे वनस्पति को बढ़ावा देना और उचित भूमि-उपयोग योजना को अपनाने से दीर्घकालिक कटाव नियंत्रण में योगदान मिलता है। संरक्षण के प्रयास और सामुदायिक भागीदारी सफल मृदा क्षरण प्रबंधन को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, एक संतुलित दृष्टिकोण सुनिश्चित करते हैं जो कृषि उत्पादकता और पर्यावरणीय स्थिरता दोनों पर विचार करता है।

कस्टम हायरिंग के माध्यम से कुशल पराली प्रबंधन: कृषि अवशेषों के प्रबंधन के लिए एक टिकाऊ दृष्टिकोण

अपर्णा जायसवाल[1],आराधना कुमारी[1], सुरेन्द्र कुमार राय[2] एवं विनीता परते[1]

[1]कृषि महाविद्यालय, ज.ने.कृ.वि.वि., गंज बासोदा, मध्य प्रदेश
[2]कृषि महाविद्यालय, ज.ने.कृ.वि.वि., बालाघाट, मध्य प्रदेश

भारत में फसल अवशेषों का अनुचित प्रबंधन एक गंभीर समस्या है, जो न केवल मृदा की उर्वरता को प्रभावित करता है बल्कि पर्यावरण प्रदूषण का भी मुख्य कारण बनता है। किसान आमतौर पर फसल अवशेषों को जला देते हैं, जिससे हानिकारक गैसों का उत्सर्जन होता है और मृदा के पोषक तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। इस लेख में फसल अवशेषों के प्रभावी प्रबंधन के तरीकों का उल्लेख किया गया है जिसमें अवशेषों को जैव-अवयव और जैव-ईंधन में बदलकर ऊर्जा उत्पादन में उपयोग करने की संभावनाएं भी शामिल हैं। सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयास जैसे कस्टम हायरिंग सेंटर्स और सब्सिडी, किसानों को अवशेषों के प्रबंधन हेतु प्रेरित कर सकते हैं। इस प्रकार, फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन न केवल मृदा की गुणवत्ता को सुधार सकता है बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

परिचय

भारत में लाखों टन अपशिष्ट कृषि एवं इससे जुड़े उद्यम उत्पन्न करते हैं। आंकड़ों के अनुसार, 70 प्रतिशत अपशिष्ट का उपयोग औद्योगिक क्षेत्र में होने के साथ-साथ घरेलू ईंधन के रूप में भी होता है। शेष अपशिष्ट को जैव-अवयवों एवं जैव-ईंधनों में तब्दील किया जा सकता है और इसका उपयोग ऊर्जा उत्पादन में भी किया जा सकता है। भारत में अधिकांश किसान एक फसल के बाद दूसरी फसल की जल्दी बुवाई करने के लिए पहली फसल के अवशेषों को खेत में जला देते हैं। फसल अवशेषों को जलाए जाने से न केवल मृदा की उर्वराशक्ति में कमी आती है बल्कि अवशेषों से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचता है। वर्तमान परिपेक्ष्य में फसल अवशेषों या पराली को जलाने से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण को समाप्त करने की विशेष जरूरत है। पराली को जलाने से उत्पन्न होने वाली जहरीली गैसें मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत नुकसानदेह हैं। यदि फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन कर उसे खाद के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए तो जहाँ एक ओर इससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार होगा वहीं दूसरी ओर महंगे रासायनिक उर्वरकों के खर्च में भी कटौती होगी।

फसल अवशेषों को जलाने से होने वाले दुष्प्रभाव:

कृषक भाई यदि फसल अवशेष जलाते हैं तो उनसे होने वाली हानियां निम्नवत हैं:

1. फसलों के अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तनों एवं पत्तियों में संचित लाभदायक पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।
2. अवशेषों से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचता है। खेतों में फसल अवशेषों को जलाने के कारण अत्यधिक मात्रा में वायु प्रदूषण होता है। साथ ही ग्रीन हाउस गैसें जैसे- कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रस आक्साइड आदि का उत्सर्जन ग्लोबल वार्मिंग के लिए भी उत्तरदायी होता है।
3. फसल अवशेषों को जलाने से मृदा ताप में बढ़ोत्तरी होती है जिसके कारण मृदा के भौतिक, रसायनिक

एवं जैविक दशा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

4. पादप अवशेषों में लाभदायक मित्र कीट जलकर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
5. पशुओं के चारे की व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
6. जहाँ पर कम्बाईन हारवेस्टर का प्रयोग फसलों के कटाई में करते हैं वहाँ पर फसलों के अवशेष डण्ठल के रूप में खड़े होते हैं एवं उनके जलाने पर नजदीक के किसानों के फसलों में आग लगने की संभावना बनी रहती है जिससे खड़ी फसल एवं आबादी में अग्निकाण्ड होने की संभावना बनी रहती है, वहीं आस-पास के खेत-खलिहान तथा मकान में भी अग्निकाण्ड के कारण अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

पराली जलाता किसान

फसल अवशेष के फायदे:

1. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के घटक के रूप में फसल अवशेष भी अहम योगदान प्रदान करता है।
2. मृदा को स्वस्थ रखने के लिए फसल अवशेषों का पुन: चक्रण, भूमि में सीधा मिलाकर सड़ा-गला देने से पोषक तत्वों की उपलब्धता तो बढ़ती ही है साथ ही इसका मिट्टी के गुणों पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
3. मृदा के जीवांश में हो रहे लगातार ह्रास को कम करने में योगदान करता है।
4. कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन हारवेस्टर द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में लगभग 1.29 गुना अन्य फसल अवशेष होते हैं। ये खेत में सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं।
5. फसल अवशेषों से प्राप्त कार्बनिक पदार्थ भूमि में जाकर मृदा पर्यावरण में सुधार कर सूक्ष्मजीवी अभिक्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं। जिससे कृषि टिकाऊ रहने के साथ-साथ उत्पादन में भी वृद्धि प्राप्त की जा सकती है।
6. मृदा में कार्बनिक पदार्थ की बढ़ोत्तरी से मृदा जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है जिसके कारण उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
7. फसल अवशेष से वातावरण के विपरीत परिस्थितियों से फसलों को बचाने में सहायता मिलती है,

उदाहरण मल्च के रूप में प्रयोग।

8. दलहनी फसलों के फसल अवशेष भूमि में नत्रजन एवं अन्य पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाने में सहायक हैं।
9. फसल अवशेष कम्पोस्ट खाद बनाने में सहायक है जो कि मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में लाभदायक है।
10. पादप अवशेष मल्च के रूप में प्रयोग करने में मृदा जल संरक्षण के साथ-साथ फसलों को खरपतवारों से बचाने में सहायक है। मृदा जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। मृदा वायु संचार में बढ़ोत्तरी होती है।
11. जानवरों के लिए चारे की कमी: फसल अवशेषों को पशुओं के लिए सूखे चारे के रूप में प्रयोग किया जाता है अत: फसल अवशेषों को जलाने से पशुओं को चारे की कमी का सामना करना पड़ता है।

फसल अवशेष के उचित प्रबंधन के लिय सरकार द्वारा किए गए प्रयास

फसल अवशेष जलाने की रोकथाम करने के लिए राज्य सरकार द्वारा खूब प्रयास किये जा रहे है। केंद्रीय स्तर पर यह योजना कृषि, सहकारिता और किसान कल्याण विभाग (DAC&FW) द्वारा प्रशासित होगी। इस उद्देश्य में सफलता हासिल करने के लिए सरकार द्वारा एक विशेष कार्य योजना तैयार की गई है। इस कार्य योजना के तहत फसल अवशेष प्रबंधन को लेकर कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित करवाये जा रहे हैं ताकि फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन हो सके और किसान उन्हें न जला पाये। कस्टम हायरिंग सैंटरों में कृषि से सम्बन्धित सभी मशीने व अन्य औजार उपलब्ध होंगे। यहां से किसान नाममात्र दरों पर कृषि यंत्र किराये पर लेकर कृषि कार्य कर सकेंगे। कस्टम हायरिंग सैंटर स्थापित करने पर सरकार द्वारा 80 प्रतिशत तक अनुदान भी उपलब्ध करवाया जायेगा। सरकार फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी के लिए 50-80 प्रतिशत की दर से सब्सिडी मुहैया करा रही है। इन मशीनों से फसल अवशेष को मिट्टी के साथ मिश्रित करने में किसानों को मदद मिलती है, जिससे इसे और ज्यादा उत्पादक बनाना संभव हो पाता है। किसान समूहों को विशिष्ट जरूरतों के अनुसार फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी की सहायता लेने हेतु कृषि मशीनरी बैंकों की स्थापना करने के लिए परियोजना लागत के 80 प्रतिशत की दर से वित्तीय मदद मुहैया कराई जा रही है।

खेत में फसल अवशेषों के प्रबंधन से मिट्टी को और भी अधिक उर्वर बनाने में मदद मिलेगी जिससे किसानों की उर्वरक लागत में प्रति हेक्टेयर 2000 रुपये की बचत होगी। फसल अवशेष से पटिया (पैलेट) बनाकर इसका इस्तेमाल विद्युत उत्पादन में किया जा सकता है। कृषि यंत्रीकरण से जुड़े उप-मिशन के तहत पुआल रेक, पुआल की गठरी, लोडर, इत्यादि पर 40 प्रतिशत सब्सिडी दी जाती है। इसके जरिए फसल अवशेष को संग्रहीत किया जाता है और इससे गांठें बनाई जाती हैं, ताकि फसल अवशेष की पटिया (पैलेट) को विद्युत उत्पादन संयंत्रों तक पहुंचाने में आसानी हो सके। आईसीएआर के कृषि इंजीनियरिंग प्रभाग ने धान के भूसे के जैव भार (बायोमास) से जैव गैस का उत्पादन करने के उद्देश्य से जैव-ऊर्जा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किए हैं।

योजना के घटक

- स्व-स्थाने फसल अवशेष प्रबंधन मशीनरी के लिये कृषि मशीनरी बैंक की स्थापना की जाएगी जहाँ से किसान मशीनों को किराए पर ले सकेंगे।
- किसानों की पंजीकृत सहकारी समितियों, किसान उत्पादक संगठनों (FPOs), स्वंय सहायता समूहों, पंजीकृत किसान समितियों/किसान समूहों, निजी उद्यमियों, महिला किसान समूहों को कृषि मशीनरी बैंक अथवा कस्टम हायरिंग केंद्र स्थापित करने के लिये परियोजना लागत के 80% की

दर से वित्तीय सहायता दी जाएगी।

- स्व-स्थाने अवशेष प्रबंधन के लिये किसानों को कृषि मशीनरी तथा उपकरण खरीद हेतु वित्तीय सहायता देना। व्यक्तिगत रूप से किसानों को कृषि अवशेष प्रबंधन के लिये मशीनरी/उपकरणों की लागत के 50% की दर से वित्तीय सहायता दी जाएगी।
- फसल अवशेष प्रबंधन पर जागरूकता के लिये राज्य सरकारों, किसान विकास केंद्रों, ICAR संस्थानों, केंद्र सरकार के संस्थानों, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों इत्यादि को सूचना, शिक्षा तथा प्रचार-प्रसार के कार्यकलापों हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जायेगी।
- इसके अलावा किसी भी प्रकार के अवशेष न जलाने वाले ग्राम/ग्राम पंचायत को पुरस्कार भी दिया जाएगा।

निष्कर्ष:

फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन भारतीय कृषि के स्थायित्व और पर्यावरण संरक्षण के लिए अत्यावश्यक है। अवशेषों को जलाने के बजाए, उनका पुन: उपयोग खाद, जैव-ईंधन और जैव-अवयवों के रूप में करना अधिक फायदेमंद है। इससे न केवल मृदा की उर्वरता बढ़ेगी, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होगी। सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रम और योजनाएँ इस दिशा में एक सकारात्मक कदम हैं, लेकिन उनकी सफलता के लिए किसानों में जागरूकता बढ़ाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। भविष्य में, इस क्षेत्र में और भी नवाचार और तकनीकी समाधान अपनाने की आवश्यकता है ताकि फसल अवशेषों को सही तरीके से प्रबंधित कर सकें और पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर सकें।

थार मरूस्थल की शुष्क पारिस्थितिकी में जैविक खेती से मृदा संरक्षण

महेश कुमार गौड़ एवं राजेश कुमार गोयल
भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

मिट्टी और पानी किसी भी फसल उत्पादन के लिए बुनियादी आवश्यकताएँ हैं। इन दोनों में से किसी एक की भी अनुपस्थिति में फसल उत्पादन असंभव है। समय के साथ मिट्टी की उत्पादकता में गिरावट आती है। इसलिए उपजाऊ भूमि और जल के समुचित संरक्षण के बिना फसल उत्पादन में दीर्घकालिक स्थिरता लाना संभव नहीं है। स्थानीय संसाधनों के उचित संरक्षण और प्रबंधन के माध्यम से ही फसल उत्पादन को प्रभावी ढंग से बनाए रखा जा सकता है। पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ मुख्य रूप से रासायनिक नाइट्रोजन (N) उर्वरकों पर निर्भर रहती हैं। वर्ष 2017 में वैश्विक नाइट्रोजन उर्वरक की खपत 108 मिलियन टन प्रति वर्ष तक पहुँच गई। हालाँकि, इसमें से आधे से भी कम नाइट्रोजन का उपयोग फसलें करती हैं। शेष नाइट्रोजन पर्यावरण में घुलकर अनेक पर्यावरणीय समस्याओं का कारण बनता है, जैसे जलाशयों में यूट्रोफिकेशन, पीने के पानी का प्रदूषण, जैव विविधता का नुकसान, और ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन। अतः नाइट्रोजन के प्रभावी और पर्यावरण-अनुकूल उपयोग के लिए एक वैकल्पिक कृषि प्रणाली को अपनाना आवश्यक है।

जैविक खेती मिट्टी की पारिस्थितिक प्रक्रियाओं पर आधारित होती है और इसमें रासायनिक उर्वरकों या कीटनाशकों का उपयोग निषिद्ध है। प्रारंभिक वर्षों में, जैविक कृषि पद्धति से फसल उत्पादन में कमी हो सकती है, लेकिन दीर्घकाल में यह मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करती है। मिट्टी के स्वास्थ्य को पौधों, जानवरों, और मानवों को बनाए रखने के लिए मिट्टी की एक जीवंत पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में निरंतर कार्य करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जाता है। मिट्टी के स्वास्थ्य को मापने के लिए कई भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों का उपयोग किया जाता है। इनमें मिट्टी में जैविक कार्बन की मात्रा, सूक्ष्मजीवों का जैव द्रव्यमान, और मिट्टी के संघटन की स्थिति शामिल हैं। इस प्रकार, मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखने और पर्यावरणीय दुष्प्रभावों से बचने के लिए जैविक खेती एक प्रभावी विकल्प हो सकती है। पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ जहाँ रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और अन्य कृत्रिम पदार्थों का अत्यधिक उपयोग करती हैं, वहाँ मृदा की उर्वरता और स्वास्थ्य में गिरावट आई है। दूसरी ओर, जैविक खेती एक ऐसी पद्धति है जो मृदा की प्राकृतिक संरचना और जैविक संतुलन को बनाए रखती है और उसे बेहतर बनाने की कोशिश करती है।

शुष्क पारिस्थितिकी में मृदा संरक्षण एक प्रमुख चुनौती है। शुष्क क्षेत्र कम वर्षा, उच्च तापमान और सीमित जल संसाधनों के लिए जाना जाता है, जिससे भूमि की उर्वरता और संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में जैविक खेती एक प्रभावी समाधान के रूप में उभर रही है। जैविक खेती रसायनों और कृत्रिम सामग्री के उपयोग को कम करके प्राकृतिक संसाधनों और प्रक्रियाओं का उपयोग करती है। यह न केवल पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ावा देती है, बल्कि मृदा की गुणवत्ता और उत्पादकता को भी बनाए रखती है। इस लेख में, जैविक खेती के माध्यम से मृदा संरक्षण की प्रक्रिया और उसके लाभों पर विस्तृत चर्चा की गई हैं।

शुष्क पारिस्थितिकी की विशेषताएँ और चुनौतियाँ

भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है लेकिन औसत वार्षिक वर्षा के आधार से यह राज्य अन्य राज्यों की तुलना में भारत में सबसे पीछे है। राज्य में औसत वार्षिक वर्षा, देश की औसत वार्षिक वर्षा से आधी है। कम पानी व ज्यादा गर्मी यहाँ के जीवन के दो मुख्य बिन्दु है। राज्य का पश्चिमी

भू-भाग जो थार मरुस्थल के नाम से भी जाना जाता है वहाँ जल संकट की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। उच्च वाष्पीकरण दर व लगातार तेज चलने वाली आंधियॉ इस भू-भाग को और भी अधिक विकट बना देती हैं। अतः यहॉ खेती पूरी तरह से वर्षा पर आधारित है। भूमि पर पर्याप्त वनस्पति न होने के कारण तेज वर्षा होने या हवाऐं चलने पर जल और वायु द्वारा मृदा का क्षरण होता है। इन सभी विपरीत परिस्थितियों के कारण राज्य के इस भू-भाग को प्रायः सूखे व अकाल का सामना पड़ता है। शुष्क क्षेत्र की मुख्य बाधाएं निम्नानुसार हैं

- कम और अनियमित वर्षा
- अत्यधिक पारगम्य रेतीले इलाके
- उच्च वाष्पीकरण मांग
- गहरा और आम तौर पर खारा भूजल
- भूजल में अत्यधिक फ्लोराइड व नाइट्रेट की उपस्थिति - असुरक्षित पेयजल
- ताजे भूजल का अत्यधिक खनन
- उच्च तापमान और तेज हवाएँ के कारण मृदा क्षरण
- जल की अपर्याप्त उपलब्धता और अनुचित सिंचाई के कारण मृदा में लवणता संचय
- सरकारी जल आपूर्ति पर निर्भरता
- जल नीति का उचित तरीके से क्रियान्वयन नहीं किया जाना
- भूजल कानून का अभाव
- स्थानीय आबादी की खराब सामाजिक-आर्थिक स्थिति
- शिक्षा का अभाव

इन परिस्थितियों में थार मरुस्थल, जिसे "महान भारतीय मरुस्थल" के नाम से भी जाना जाता है, में कृषि कार्य करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

जैविक खेती की परिभाषा और उद्देश्य

इंटरनेशनल फ़ेडरेशन ऑफ़ ऑर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स (IFOAM) के अनुसार, जैविक कृषि एक ऐसी उत्पादन प्रणाली है जो मृदा, पारिस्थितिकी तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होती है। यह पारिस्थितिकीय प्रक्रियाओं, जैवविविधता और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल चक्रों पर निर्भर करती है, तथा इनमें इस तरह के पदार्थ का प्रयोग किया जाता है जो पर्यावरण के लिए अनुकूल होते हैं। जैविक कृषि परंपरा, नवाचार और विज्ञान का संयोजन है, जिसका उद्देश्य साझा पर्यावरण का लाभ उठाना और इसमें शामिल सभी के लिए उचित संबंध और उच्च गुणवत्ता वाली जीवनशैली को बढ़ावा देना है। जैविक कृषि चार मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है: स्वास्थ्य, पारिस्थितिकी, न्याय और परवरिश का सिद्धांत।

जैविक खेती एक ऐसी कृषि पद्धति है जो पारंपरिक और प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करती है। इसका उद्देश्य न केवल उत्पादों का उत्पादन करना, बल्कि मृदा, जल, और पर्यावरण के स्वास्थ्य को भी बनाए रखना है। जैविक खेती में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और कृत्रिम रासायनिक पदार्थों का उपयोग नहीं किया जाता है। इसके बजाय, जैविक खेती में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता है जैसे जैविक खाद, हरी खाद, जैविक कीटनाशक, और फसल चक्रीयता।

जैविक खेती का महत्व

जैविक खेती, जिसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग नहीं किया जाता, एक पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणाली है। यह पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखते हुए मृदा की जैविक उर्वरता को बनाए रखने में सहायक है।

1. **प्राकृतिक पोषण चक्र:** जैविक खेती मृदा में पोषण चक्र को पुनर्जीवित करने के लिए जैविक खाद, कम्पोस्ट और हरी खाद का उपयोग करती है।
2. **जैव विविधता:** विभिन्न प्रकार की फसलों और अंतर-फसल प्रणाली को अपनाकर पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखा जाता है।
3. **रसायनों का निषेध:** रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के स्थान पर जैविक विकल्पों का उपयोग किया जाता है।
4. **जलधारण क्षमता में वृद्धि:** सूक्ष्म सिंचाई और मल्चिंग जैसी तकनीकों का उपयोग करके जैविक खेती से मृदा की संरचना में सुधार होता है, जिससे उसकी जलधारण क्षमता बढ़ती है, और जल उपयोग दक्षता को बढ़ावा दिया जाता है।
5. **पारिस्थितिकी तंत्र को मजबूती:** जैविक खेती स्थानीय वनस्पतियों और जीव-जंतुओं के संरक्षण में सहायक है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र मजबूत होता है।

जैविक खेती द्वारा मृदा संरक्षण

1. **स्थानीय कृषि प्रणालियों का अनुकूलन:** पारंपरिक कृषि पद्धतियों को जैविक खेती के साथ जोड़कर थार मरुस्थल में जलवायु के अनुरूप कृषि मॉडल तैयार किया जा सकता है।
2. **मृदा संरचना में सुधार:** जैविक खेती में जैविक पदार्थों का उपयोग किया जाता है जैसे कम्पोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद आदि। ये पदार्थ मृदा में कार्बन की मात्रा को बढ़ाते हैं, जिससे मृदा की संरचना में सुधार होता है। इसके परिणामस्वरूप मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है, जल निकासी में सुधार होता है और मृदा अधिक स्थिर और उपजाऊ बनती है।
3. **मृदा का जैविक विविधता संरक्षण:** जैविक खेती में रासायनिक रोधक पदार्थों का उपयोग न करने से मृदा में रहने वाले सूक्ष्मजीवों, कीड़ों और अन्य जैविक तत्वों की विविधता बनी रहती है। ये जीव मृदा की उर्वरता को बनाए रखते हैं और मृदा के प्राकृतिक संतुलन को संरक्षित करते हैं। जैविक खेती में मृदा के स्वास्थ्य को संरक्षित रखने के लिए जैविक कीटनाशकों और प्राकृतिक नियंत्रकों का उपयोग किया जाता है, जिससे मृदा में कीड़ों और बैक्टीरिया की सक्रियता बनी रहती है।
4. **मृदा क्षरण की रोकथाम:** मृदा क्षरण, विशेष रूप से जल और वायु के कारण, पारंपरिक कृषि में एक प्रमुख समस्या है। जैविक खेती में फसल चक्रीयता, घास और अन्य सुरक्षा फसलें का उपयोग मृदा को ढककर उसे संरक्षण प्रदान करने का काम करता है। इससे मृदा का कटाव और क्षरण कम होता है, और मृदा की उपजाऊ परत सुरक्षित रहती है। इसके अलावा, जैविक खेती में तात्कालिक और दीर्घकालिक दोनों रूपों में मृदा संरक्षित रहती है।
5. **जल की संचयन क्षमता में वृद्धि:** जैविक खेती में जैविक पदार्थों और हरी खाद का उपयोग मृदा की जल धारण क्षमता को बढ़ाता है। यह मृदा को नमी बनाए रखने में सक्षम बनाता है, जिससे सूखा और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटना आसान होता है। जल धारण क्षमता का बढ़ना कृषि में पानी की खपत को कम करता है और कृषि उत्पादकता में स्थिरता लाता है।

6. **मृदा की उर्वरता का दीर्घकालिक संरक्षण:** पारंपरिक खेती में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मृदा में पोषक तत्वों का असंतुलन पैदा हो सकता है, जो समय के साथ मृदा की उर्वरता को कम करता है। जैविक खेती में, पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग मृदा की उर्वरता को बनाए रखने में मदद करता है। जैविक खाद और कम्पोस्ट में प्राकृतिक पोषक तत्व होते हैं, जो मृदा को लंबे समय तक उर्वर बनाए रखते हैं।

7. **कार्बन संग्रहण:** जैविक खेती में, मृदा में कार्बन का संग्रहण अधिक होता है, जिससे ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। जैविक पदार्थों का मृदा में स्थिर रूप से संग्रहीत होना, मृदा को कार्बन के एक प्राकृतिक भंडार के रूप में बदलता है। इससे मृदा की उर्वरता में सुधार होता है और वातावरण में कार्बन का स्तर कम होता है।

8. **ग्रामीण आजीविका में सुधार:** जैविक खेती उत्पादों की बढ़ती मांग किसानों को बेहतर मूल्य प्रदान करती है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।

मृदा संरक्षण के लिए जैविक कृषि विधियाँ

1. **फसल चक्रीयता (Crop Rotation):** फसल चक्र जैविक खेती में एक महत्वपूर्ण तकनीक है जो मृदा की उर्वरता को बनाए रखने और विभिन्न पोषक तत्वों की आपूर्ति करती है। विभिन्न फसलों के बीच बारी-बारी से उगाई जाने वाली फसलें मृदा के पोषक तत्वों को संतुलित रखने में मदद करती हैं और मृदा में रोगाणुओं और कीटों के आक्रमण को भी कम करती हैं।

2. **मल्चिंग:** मृदा पर जैविक सामग्री, जैसे घास या सूखे पत्ते, बिछाकर नमी संरक्षण किया जाता है।

3. **कम्पोस्टिंग:** जैविक कचरे को खाद में बदलकर मृदा की उर्वरता को बढ़ाया जाता है।

4. **हरी खाद और ग्रीन मैन्योर (Green Manure):** हरी खाद फसलों जैसे कि ढैंचा और सनई को मृदा में मिलाने से न केवल नाइट्रोजन की मात्रा और पोषक तत्वों की आपूर्ति होती है, बल्कि मृदा का कार्बन स्तर भी बढ़ता है। ग्रीन मैन्योर फसलों को मृदा में मिलाकर मृदा की संरचना में सुधार किया जाता है और मृदा की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।

5. **सुरक्षा फसल (Cover Crops):** सुरक्षा फसलों का उपयोग मृदा को ढकने और उसकी रक्षा करने के लिए किया जाता है। ये मृदा के कटाव को रोकते हैं, मृदा में नमी बनाए रखते हैं, और मृदा में जैविक सक्रियता को बढ़ावा देते हैं।

6. **पशु खाद (Animal Manure):** जैविक खेती में पशु खादों का उपयोग मृदा की उर्वरता को बढ़ाने के लिए किया जाता है। पशु खाद मृदा के कार्बन और नाइट्रोजन संतुलन को बनाए रखने में मदद करते हैं, और मृदा की जैविक क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं।

7. **जल संचयन:** वर्षा जल संग्रहण और सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

8. **समेकित पोषण प्रबंधन:** प्राकृतिक संसाधनों और स्थानीय उपलब्धता के आधार पर पोषण प्रबंधन से मृदा स्वास्थ्य बनाए रखा जा सकता है।

थार मरूस्थल में जैविक खेती को अपनाने की चुनौतियाँ

1. **सीमित जल संसाधन:** जैविक खेती के लिए आवश्यक न्यूनतम जल उपलब्ध कराना चुनौतीपूर्ण है।

2. **जलवायु परिवर्तन:** जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा और तापमान में वृद्धि की समस्या बढ़ती है।

3. **प्रशिक्षण और जागरूकता की कमी:** किसानों में जैविक खेती के तकनीकी ज्ञान और लाभों के प्रति जागरूकता का अभाव है।
4. **शुरूआती लागत:** जैविक खेती में परिवर्तन की शुरूआती लागत और इसमें लगने वाला समय किसानों को हतोत्साहित कर सकता है।
5. **बाजार की सीमाएँ:** जैविक उत्पादों के लिए स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच सीमित है।

संभावित समाधान और सुझाव

1. **जल संरक्षण तकनीकें:** परंपरागत जल संरक्षण तकनीकें जैसे टांका, नाड़ी, खड़ीन, बूंद-बूंद सिंचाई और तालाब निर्माण को बढ़ावा देना।
2. **सामुदायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम:** किसानों को जैविक खेती के लाभ और तकनीकों के बारे में शिक्षित करना।
3. **नीतिगत समर्थन:** सरकार द्वारा जैविक खेती को प्रोत्साहन देने के लिए अनुदान और सब्सिडी प्रदान करना।
4. **सहकारी मॉडल:** किसानों के समूह बनाकर जैविक उत्पादों की मार्केटिंग और निर्यात को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष

जैविक खेती मृदा संरक्षण में एक अत्यंत प्रभावी और स्थायी पद्धति के रूप में उभरी है। यह न केवल मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करती है, बल्कि पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को भी बनाए रखती है। जैविक खेती के माध्यम से हम मृदा की उर्वरता, जल धारण क्षमता, और जैविक विविधता को संरक्षित कर सकते हैं, जिससे कृषि उत्पादन की स्थिरता और दीर्घकालिक सफलता सुनिश्चित होती है। जैविक कृषि को अपनाने से मृदा संरक्षण के साथ-साथ वैश्विक जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकटों का समाधान भी संभव हो सकता है।

जैविक खेती थार मरुस्थल में मृदा संरक्षण और स्थायी कृषि के लिए एक संभावित प्रभावी और स्थायी समाधान हो सकती है। यह न केवल पर्यावरण की रक्षा करती है, बल्कि किसानों की आय और जीवन स्तर को भी बेहतर बनाती है। जैविक खेती की तकनीकें, जैसे मल्चिंग, सूक्ष्म सिंचाई, और फसल चक्र, जल संरक्षण और मृदा उर्वरता को बनाए रखने में मदद कर सकती हैं। इसके अलावा, जैविक खाद और कम्पोस्ट का उपयोग मिट्टी की संरचना और जैव विविधता को सुधार सकता है। थार मरुस्थल में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए सरकारी नीतियों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों की आवश्यकता है। यह न केवल पर्यावरणीय स्थिरता में योगदान देगा, बल्कि स्थानीय किसानों की आय और जीवन स्तर में भी सुधार करेगा। जैविक खेती के व्यापक प्रचार-प्रसार और तकनीकी नवाचारों के माध्यम से शुष्क क्षेत्रों में स्थायी जैविक कृषि का सपना साकार किया जा सकता है।

वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में संरक्षण कृषि का प्रभाव

ए.के. इंदौरिया, सुमंत कुंडू, जी. प्रतिभा, के. श्रीनिवास, एस. सुवना, के.वेंकटेश्वर राव, हेमंत साहू, मुन्ना लाल, मनीषा एवं विनोद कुमार सिंह

भाकृअनुप - केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद

भारत में कृषि फसलों के अंतर्गत 142 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में से लगभग 83 मिलियन हेक्टेयर वर्षा पर निर्भर है। यहां फसल की पैदावार काफी कम होती है। हालाँकि देश मे बोई जाने वाली लगभग सभी फ़सलें वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों मे भी बोई जाती है। इन क्षेत्रों में मुख्य रूप से ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, अरहर, मूंग, मोठ, उड़द, चना, कपास, तिल, चावल, मूंगफली, सोयाबीन, अरंड़ इत्यादि प्रमुख फ़सलें प्रमुखता से बोई जाती हैं। साथ ही साथ देश मे व्याप्त सभी प्रकार की मृदा भी वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों मे विध्यमान है। वर्तमान मे पारम्परिक कृषि से भूमि क्षरण से मृदा का कटाव, पोषक तत्वों का दोहन, मृदा में कार्बनिक पद्धार्थों की कमी, मृदा की उत्पादन शक्ति में कमी, जैव विविधता में कमी, अनियमित भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन एवं आर्थिक नुकसान के रूप में देखा जा रहा है। इन समस्याओं से निपटने के लिये कृषि वैज्ञानिकगण कृषि की नई-नई तकनीकियों का विकास कर रहे है। इसी दिशा मे कार्य करते हुए कृषि वैज्ञानिकगण पिछले दो दशक से संरक्षण कृषि पर जोर दे रहे है। संरक्षण कृषि के तीनों सिद्धांतों (शून्य जुताई, फसल चक्रण एवं फसल अवशेषों से मृदा सतह आच्छादन) को एक साथ अपनाया जाये तो यह प्राकृतिक संसाधन संरक्षण, जलवायु संतुलन, जैव विविधता, खाद्य सुरक्षा, पोषक तत्व चक्रण, मृदा क्षरण नियंत्रण, जैविक कार्बन जब्तीकरण एवं ईंधन, समय, फसल और श्रम लागत मे कमी करने मे विशेष भूमिका निभा सकती है।

संरक्षण कृषि की विशेषताएं

संरक्षण कृषि में मुख्य रूप से फसल प्रबंधन के तीन सिद्धांत शामिल हैं: न्यूनतम या शून्य जुताई (मृदा को न्यूनतम उलट-पुलट करना), सतह पर फसल अवशेष प्रतिधारण और उचित फसल चक्रण। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन ने संरक्षण कृषि को परिभाषित करते हुए लिखा है की इसमें निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए । क) निरंतर न्यूनतम जुताई (शून्य जुताई)-जुताई क्षेत्र एक स्थान पर 15 सें.मी. से ज्यादा चौड़ा नहीं होना चाहिए या खेत में कुल जुताई क्षेत्र 25 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए, ख) मृदा सतह आच्छादित-मृदा सतह को स्थाई तौर पर फसल अवशेषों (फसलों की कड़वी) द्वारा ढक कर रखना चाहिए। फसल जुताई के समय कम से कम 30 प्रतिशत मृदा सतह क्षेत्रफल फसल अवशेषों या इसके अंशों द्वारा ढका होना चाहिए, एवं (ग) उपयुक्त फसल चक्र प्रणाली-उपयुक्त फसल चक्र प्रणाली में कम से कम तीन विभिन्न प्रकार की फसलों (छोटी जड़ों एवं लंबी जड़ों वाली) का समावेश होना चाहिए।

पारंपरिक जुताई अच्छी बीज क्यारी तैयार करने मे और खरपतवार को नियंत्रित करने मे सहायक होती है। इसके विपरीत बार-बार जुताई करने से मृदा संरचना, मृदा संघनन, मृदा अपरदन, मृदा लवणीकरण मे बढ़ोतरी देखी गयी है, तथा मृदा कार्बनिक पद्धार्थ और पोषक तत्वों में गिरावट आती हैं। परिणामस्वरूप, पारंपरिक जुताई मे फसल आगतों (खाद, ट्रेक्टर भाड़ा, मजदूरी इत्यादि) मे बढ़ोतरी होने के कारण फसल की उत्पादन लागत बढ़ जाती है। संरक्षण कृषि पद्धति मे संसाधनों के संरक्षण के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए फसल का उत्पादन किया जाता है। अथार्त संरक्षण कृषि के तीनों सिद्धांतों (शून्य जुताई, फसल चक्रण एवं फसल अवशेषों से मृदा सतह आच्छादन) को एक साथ अपनाया जाये तो यह प्राकृतिक संसाधन संरक्षण, जलवायु संतुलन, जैव विविधता, खाद्य सुरक्षा, पोषक तत्व चक्रण, मृदा क्षरण नियंत्रण, जैविक कार्बन जब्तीकरण एवं ईंधन, समय, फसल और श्रम लागत मे कमी करने मे विशेष भूमिका निभा सकती है।

भारत में संरक्षण कृषि प्रणाली सिंचित पारिस्थितिकी तंत्र वाले क्षेत्रों में अपनायी जा रही है जिसमें मुख्यतः सिंधु एवं गंगा नदी के मैदानी क्षेत्र हैं। अन्य फसलों और फसल प्रणालियों में, पारंपरिक कृषि आधारित फसल प्रबंधन प्रणालियों में धीरे-धीरे गहन जुताई से कम/शून्य-जुताई अपनाई जा रही हैं। अन्य प्रमुख कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र जैसे वर्षा आधारित, अर्ध-शुष्क उष्णकटिबंधीय और पर्वतीय कृषि-पारिस्थितिक तंत्र के शुष्क क्षेत्र मे संरक्षण कृषि प्रणालियों को ज्यादा बढ़ावा नहीं दिया गया है। इसी प्रकार, सिंचित प्रणालियों के विपरीत, वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में बहुत सीमित शोध कार्य किया गया है।

वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों मे मृदा विकृतिकरण की समस्याएं

वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में मुख्यत: काली मृदाएं (वर्टिसोल), लाल मृदाएं (अल्फिसोल), रेगिस्तानी मृदाएं (अरिडिसॉल), असुस्तरी मृदा (एन्टीसोल), नवीन मृदाएं (इन्सेप्टीसोल) के साथ मिश्रित मृदाएं (मिक्स्ड सॉइल) प्रमुखता से पाई जाती हैं। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में काली मृदाओं एवं लाल मृदाओं की बहुतायता पाई जाती है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में मृदा विकृतिकरण की समस्यायों से ग्रसित होने से फसल पोषक तत्वों की कमी पाई जाती है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की कम जैविक कार्बन अंश वाली मृदाओं में नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पाई जाती है। अधिक तापमान एवं अधिक जुताई क्रियायों के कारण ज्यादातर वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की मृदाओं में कार्बनिक अंश की मात्रा कम है। यद्यपि मृदा कार्बनिक अंश कई पादप पोषक तत्वों जैसे कि नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर एवं सूक्ष्म तत्वों का स्त्रोत है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की मृदाओ मे जीवाण्वीय गतिविधियां भी अक्सर कम पाई जाती है जिसकी मुख्य वजह मृदा नमी मे कमी एवं कम जैविक कार्बन का होना है। कम जीवाण्वीय गतिविधियों की वजह से फसल पोषक तत्वों की उपलब्धता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पोषक तत्वों में कमी एवं कम जीवाण्वीय गतिविधियां के अलावा मृदा भौतिक गुणों मे भी विकृत्तिकरण देखा गया है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में अधिक मृदा जल संचालकता दर की वजह से वर्षा जल तीव्र गति से मृदा की निचली सतहों में चले जाने से जड़ों की पहुँच से दूर चला जाता है। इसके विपरीत वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की काली मृदाओं में कम मृदा जल संचालकता की वजह से वर्षा जल धीरे-धीरे मृदा में प्रवेश करता है तथा तीव्र वर्षा के दौरान ये वर्षा जल भूमि की सतह पर लंबे समय तक रुकता है जो जल बहाव एवं मृदा कटाव का कारण बनता है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की विभिन्न प्रकार की मृदाएं बनावट की दृष्टि से कमजोर है, जो फसलोत्पादन में गिरावट की प्रमख वजह है। काली मृदाएं वर्षा के दौरान अधिक लचीली तथा सूखे के दौरान कठोर हो जाती हैं। जिसके परिणामस्वरूप इन मृदाओं में विभिन्न कृषि कार्य करना कठिन हो जाता है। वर्षा के दौरान जल बहाव एवं मृदा कटाव की समस्या देखी गई है, जिसकी मुख्य वजह भूमि की ढ़लान वाली सतह का होना, भूमि की सतह की जल भेदन क्षमता का कम होना तथा भूमि सतह पर किसी भी प्रकार के जैविक आवरण का न होना प्रमुख है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की काली मृदाओं को छोडकर अन्य मृदाओं में मृदा चिकने कण एवं मृदा जैविक कार्बन प्रतिशतता कम होने से इन मृदाओं की मृदा जल धारण क्षमता कम पाई जाती है। कमजोर मृदा जल धारण क्षमता की वजह से इन क्षेत्रों में वर्षा के तदोपरांत थोड़ा सा सूखा आने पर फसलें सूखने लगती है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की लाल मृदाओं को कमजोर बनावट, ऊपरी मृदा सतह में मोटे कणों की बहुआयता तथा उथली गहराई वाली होती है। परिणामस्वरूप फसल की जड़ों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है तथा किसानों के पास फसल चयन के सीमित विकल्प बचते हैं। कमजोर मृदा संरचना की वजह से इन क्षेत्रों की असुस्तरी मृदा (एन्टीसोल), नवीन मृदाएं (इन्सेप्टीसोल), रेगिस्तानी, लाल मृदाओं में सतह पर वर्षा तदोपरांत पपड़ी का निर्माण होता है, जो बीजांकुर को प्रभावित करती है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की ज्यादातर मृदाओं में नैसर्गिक रूप से भूमि की निचली परतों में कंकर पत्थर तथा अपक्षियित चट्टानों के टुकडों की एक कठोर परत पाई जाती है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों की काली मृदाओं को छोड़कर अन्य मृदाओं की मृदा घनत्वकता अधिक पाई जाती है जिससे फसलों का जड़ विकास प्रभावित होता है।

मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों मे किये गए अनुसन्धान दर्शाते है कि संरक्षण कृषि से मृदा घनत्व मे आशातीत गिरावट आती है। हालाँकि यह गिरावट फसल प्रणालियों एवं अनुसन्धान के वर्षों (समय) पर निर्भर करती है, विभिन्न अनुसंधानों मे मृदा घनत्व मे गिरावट 2 से 12 प्रतिशत दर्ज कि गयी है। संरक्षण कृषि मे मृदा सतह जल प्रवेश दर मे बढ़ोतरी देखी गयी है परिणामस्वरूप वर्षा जल ज्यादा से ज्यादा मात्रा में भूमि में प्रवेश करता है तथा जल बहाव और मृदा कटाव में कमी आती है। मृदा सतह जल प्रवेश दर 54 से 57 प्रतिशत कि बढ़ोतरी दर्ज की गई है। इसी प्रकार मृदा जैविक कार्बन मे 2-47 प्रतिशत की बढ़ोतरी देखी गई है। चूंकि संरक्षण कृषि में मृदा सतह जैविक अवशेषों द्वारा अत्याधिक ढकी रहती है, इसलिए मृदा सतह पर कठोर परत नहीं बन पाती है, जिसके कारण फसल बीजांकुर अच्छी तरह से होता है। परंपरागत कृषि के मुकाबले संरक्षण कृषि में अच्छी मृदा संरचना पाई जाती है। मृदा जैविक अंश मृदा जल प्रतिधारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है क्योंकि परंपरागत कृषि में लगातार जुताई करने से एवं फसल अवशेषों को खेत से हटाने पर मृदा जैविक अंश में गिरावट दर्ज़ की गई है। इसके विपरीत संरक्षण कृषि में अधिक जैविक अंश होने की वजह से मृदा जल प्रतिधारण क्षमता अधिक पाई जाती है। चूंकि संरक्षण कृषि में मृदा सतह फसल अवशेषों द्वारा ढकी होती है। इसलिए गर्मी वाले क्षेत्रों में परंपरागत कृषि के मुकाबले 2 से 3 डिग्री सेल्सियस तापमान में कमी दर्ज होती है। अनुसन्धान दर्शाते है की संरक्षण कृषि में जैविक अंश अधिक होने से मृदा सूक्ष्म जीवाणु, कवक, शैवाल एवं सूत्रकर्मी एवं बड़े जीव केंचूए, दीमक इत्यादि की क्रियाएं बढ़ जाती है। मृदा जैविक कार्बन सूक्ष्म जीवाणुओं के लिए ऊर्जा का स्रोत होता है। अरहर-अरंडी फसल प्रणाली में फसल अवशेषो के साथ शून्य जुताई मे उच्च कवक आबादी दर्ज की गई। लाल मृदाओ मे संरक्षण कृषि पर किये अनुसन्धान दर्शाते है की जीवाणु, कवक, एक्टिनोमाइसेट्स की आबादी अधिक देखी गए परिणामस्वरूप डीहाइड्रॉजीनेज, यूरियाज़, फोस्फेटेज इत्यादि एन्जामैंस की क्रिया कलापों मे बढ़ोतरी देखी गई है। वैश्विक स्तर पर किये गए अनुसन्धान दिखाते हैं की संरक्षण कृषि मृदा उपलब्ध सूक्ष्म पादप पोषक तत्वों मे भी बढ़ोतरी करती है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों मे किये गए अनुसन्धान दर्शाते है की संरक्षण कृषि मृदा मे फसल पोषक तत्वों की भी बढ़ोतरी करता है। विभिन्न फसल प्रणालियों मे 2-40 प्रतिशत तक मृदा उपलब्ध नत्रजन मे बढ़ोतरी देखी गई है। इसी प्रकार मृदा उपलब्ध फॉस्फोरस (6-64 प्रतिशत) एवं उपलब्ध पोटैशियम (20-26 प्रतिशत) की मात्रा मे भी बढ़ोतरी देखी गई है।

फसल उपज पर प्रभाव

सिंचित क्षेत्रों मे किये गए अनुसन्धान दर्शाते है की फसल की उपज मे आशातीत बढ़ोतरी देखी गयी है लेकिन देश के संदर्भ में, सिंचित प्रणालियों के विपरीत, वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में संरक्षण कृषि पर बहुत सीमित शोध कार्य हुआ है। वर्षा आश्रित कृषि शुष्क परिस्थितियों में लाल और काली मृदाओ मे किये गए अनुसन्धान दर्शाते है की शून्य जुताई/कम जुताई/न्यूनतम जुताई में पारम्परिक कृषि की तुलना मे फसल उपज पर भिन्न भिन्न परिणाम देखने को मिले। कुछ फसल प्रणालियों मे परम्परागत कृषि की तुलना मे अधिक फसल उपज देखी गई, जबकि कुछ फसल प्रणालियों मे कम फसल उपज दर्ज की गई। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों मे किये गए कुछ अनुसन्धान दर्शाते है की शुरुआती वर्षों मे फसल उपज शून्य जुताई/कम जुताई/ न्यूनतम जुताई में पारम्परिक कृषि की तुलना मे कम या समान देखी गई है, लेकिन जैसे जैसे संरक्षण कृषि की अवधी बढ़ती गयी उपज मे आशातीत बढ़ोतरी देखी गई है। इस कम फसल उपज का मुख्य कारण मृदा सतह पर समुचित फसल अवशेषों का न होना, परिणाम स्वरूप मृदा पर पपड़ी बनना एवं मृदा घनत्व बढ़ाने से उचित जड़ो का विकास न होना। इसके अलावा मृदा सतह जल भेदता मे कमी से मृदा मे कम जल प्रवेश देखा गया है, कालांतर मे फसल उपज मे गिरावट का कारण है। संरक्षण कृषि की क्षमता मृदा सतह पर छोड़े गए फसल अवशेषो की मात्रा एवं बिखराव पर निर्भर करती है। भाकृअनुप–केंबाकृअनुसं., हैदराबाद में किये गये अनुसन्धान दर्शाते है की संरक्षण कृषि में मक्का में 28% एवं अरहर में 29% उपज बढ़ोतरी देखी

गयी है। इसी प्रकार ज्वार में 22% एवं उड़द में 19% उपज बढ़ोतरी देखी गयी है। इसी संस्थान द्वारा किये गये अनुसन्धान दर्शाते है की ज्वार- लोबिया फसल प्रणाली में परम्परागत जुताई के मुकाबले न्यूनतम जुताई में ज्वार (16%) एवं लोबिया (60%) में अधिक उपज देखी गयी। मक्का – कुल्थी, बाजरा- अरहर, सोयाबीन, मक्का, चना इत्यादि फसलों की उपज में भी आशातीत बढ़ोतरी देखी गई है । ज्वार – अरंडी, अरहर- अरंडी, कपास- अरहर, ज्वार- मूंग इत्यादि फसल प्रणालियों में उपज में आशातीत बढ़ोतरी नहीं देखी गयी है। अर्थात संरक्षण कृषि में फसलों की उपज इसके प्रयोग वर्षों की संख्या , फसल प्रणालियों, मिट्टी के प्रकार, जलवायु इत्यादि से प्रभावित होती है ।

वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने के लिए सुझाव

वर्तमान मे संरक्षण कृषि के छोटे रूप संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकी सिंधु–गंगा नदी के मैदानी इलाकों में चावल-गेहूं फसल प्रणाली के तहत सिंचित क्षेत्रों तक सीमित है। संरक्षण कृषि का अन्य प्रमुख कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र जैसे वर्षा आधारित, अर्ध-शुष्क उष्णकटिबंधीय, शुष्क या पर्वतीय कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र में फैलाव नगण्य है। वर्षा आश्रित कृषि क्षेत्रों में संरक्षण कृषि को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित सुझाव है। (क) कृषक समुदाय के बीच मृदा संसाधन और उसके स्वास्थ्य के रखरखाव के बारे में व्यापक जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है। (ख) पशुओ के लिए अलग से वैकल्पिक चारा फसलों की उगाई करना। (ग) खड़े फसल अवशेषो में शून्य बुवाई के लिए उपयुक्त उपकरण विकसित करना। (घ) फसल विशेष पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता है। (ङ) समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए जागरूक करने की आवश्यकता है। (च) अगर शुरुवाती वर्षो में संरक्षण कृषि अपनाने के बाद शुरुआती वर्षों मे फसल उपज मे कुछ गिरावट आती है, अतः किसान को इसका उचित मुआवजा देने का प्रावधान करना चाहिए, जिससे ज्यादा से ज्यादा किसान इस प्रणाली को अपना सके। (छ) संरक्षण कृषि के सभी पहलुओं जिसमे फसल अवशेषों, मशीनरी, तकनीकी प्रबंधन, पोषक तत्व प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन इत्यादि पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

संरक्षण कृषि में मक्का की बढ़वार

संरक्षण कृषि में अरहर की बढ़वार

बागवानी पौधें के पोषक तत्वों की जरूरतों को निर्धारित करने के लिए निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली(डी आर आई एस)

सीमा भारद्वाज, राहुल मिश्रा, धीरज कुमार,
एवं संजीब कुमार बेहरा

भाकृअनुप- भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

बागवानी में सब्जी व फलोत्पादन की उपज और गुणवत्ता निर्धारित करने में पोषण एक महत्वपूर्ण कारक हैं। पौधों की पोषण स्थिति के निदान के लिए कई तरीके हैं । पौध पोषण के मुख्य उद्देश्यों में से एक है कुशल उर्वरक प्रबंधन, जिसके माध्यम से आय में वृद्धि की जा सकती है । इस हेतु यह आवशयक है कि , किसी दिए गए पोषक तत्व के उपज-सीमित प्रभाव को सही ढंग से निर्धारित कर लिया जाय । पौधों की पोषण स्थिति निर्धारित करने के लिए वर्तमान विधियों में मृदा और पौध ऊतकों का विश्लेषण दोनों शामिल हैं। मृदा विश्लेषण विधि इस धारणा पर आधारित है कि रासायनिक निष्कर्षक मृदा के पोषक तत्वों के जड़ प्रणाली अधिग्रहण को तुलनात्मक तरीके से अनुकरण करते हैं। हालांकि, यह मृदा के तापमान और वातन और पौधों मैं पोषण संबंधी अवश्यकताओं पर निर्भर करता है । मृदा विश्लेषण विधि का उपयोग करने में मृदा नमूना एकत्रीकरण एक मुख्य कार्य होता है, जो सही तरीके से मृदा नमूना एकत्रित करने पर निर्भर करता है। ऊतक विश्लेषण को मृदा विश्लेषण की तुलना में पौधों की पोषण स्थिति के मूल्यांकन का अधिक प्रत्यक्ष तरीका माना जाता है, इसमें पौधे का वह भाग लिया जाता है जो भली प्रकार पौधे के पोषण की स्थिति को परिभाषित कर सके। पत्ती को उत्तक विश्लेषण के लिए मुख्य रूप से उपयोग में लेते है क्यूंकि यह पौधे का मुख्य भाग है जहाँ पर अधिकांश पादप कार्य की सम्बंधित क्रियाये होती है साथ ही यह पौधे मैं प्रकाश संश्लेषण का प्रमुख स्थान है जहाँ से पौधे को भोजन वितरित होता है ,अतः पोषण स्तर को भी इंगित करती है । पतियों मैं पोषण स्तर पौधे की अवस्था,परिपक्वता व अन्य पोषक तत्वों में परस्पर अंतर्क्रिया पर निर्भर करता है । इसलिए यह अति आवशयक है की जिन पत्तियों को विश्लेषण हेतु नमूने के रूप मैं लिया जा रहा है वह सही हों ,विभिन्न प्रकार के फलों व सब्जियों मैं ये भाग अलग अलग हो सकते हैं व नमूने लेने का समय भी अलग अलग हो सकता है । तालिका 1 में इनका वर्णन किया गया है । पत्ती ऊतक विश्लेषण का उपयोग करके पोषण निदान के लिए कई तरीके प्रस्तावित और उपयोग किए गए हैं, जिनमें महत्वपूर्ण बिन्दु क्रान्तिक मान (CV), पर्याप्तता सीमा दृष्टिकोण (सफिसिएन्स रेंज एप्रोच), और निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली (डी आर आई एस) शामिल हैं। यह देखते हुए कि डी आर आई एस पोषण संतुलन अवधारणा (पोषक तत्वों के बीच संबंध) का उपयोग करता है, यह माना जाता है कि यह विधि पोषण संबंधी कमियों या/और अधिकता का पता लगाने में अन्य तरीकों की तुलना में अधिक सटीक व लाभकारी हो सकती है।

तालिका 1: पोषक तत्व विश्लेषण हेतु लिया गया पौधे का विशेष भाग

फसल	सैंपलिंग हेतु पौधे का भाग व समय
पपीता	नई बहार से 3-5 माह पुरानी पत्तियां
केला	रोपण के चार माह पश्चात शीर्ष से तीसरी खुली पत्ती का डंठल
नागपुर संतरा	4-6 सप्ताह बाद बिना फल वाली शाखा से 2,3,4,5 पत्तियां
अन्नानास	चार से पांच महीने की अवस्था पर ऊपर से 4 पर्ण पर 1/3 मध्य भाग
सेब /नाशपाती	शीर्ष कलिका बनने के 2-4 साप्ताह पर शीर्ष शाखा के मध्य भाग से पत्तियां

निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली (डी आर आई एस)

यह पत्ती या पौधे के विश्लेषण की व्याख्या करने का एक नया तरीका है, इस अवधारणा को सबसे पहले "ब्यूफिल्स" ने वर्ष 1973 में निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली(डी आर आई एस) नाम दिया था। यह एक व्यापक प्रणाली है जो फसल उत्पादन को सीमित करने वाले सभी पोषण संबंधी कारकों की पहचान करती है और उर्वरक अनुशंसाओं में सुधार करके उच्च फसल उपज प्राप्त करने की संभावनाओं को बढ़ाती है। इस प्रणाली में पत्ती या पौधे के ऊतक के विश्लेषण की व्याख्या के लिए पूर्ण या व्यक्तिगत पोषक तत्व सांद्रता के बजाय "पोषक तत्व अनुपात" का उपयोग करती है। पौधे की वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए या उचित उपज प्राप्त करने हेतु यह जरूरी है की पौधों को उचित मात्रा में पोषक तत्वों की प्राप्ति हो और यह भी सुनिश्चित हो की एकल पोषक तत्व के बजाय विभिन्न पोषक तत्वों के अनुपात को ध्यान में रखकर उर्वरक दिए जाए। यह अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है की किसी दिए गए पौधे के भीतर पोषक तत्वों जैसे नत्रजन (एन) ,फोस्फोरस (पी),पोटैशियम (के) के बीच इष्टतम अनुपातों का एक सेट (एन/पी या एन/के या के/पी) होता है जिसे संतुलन कहा जाता है पोषक तत्वों का कम या अधिक होने से यह अनुपात बिगड़ जाता है । मुख्य रूप से पौधे पोषण संबंधी कमियों या अधिकता का पता लगाने में "पोषण संतुलन" अवधारणा (पोषक तत्वों के बीच संबंध) का उपयोग होता है। पोषक तत्व संतुलन (डी आर आई) एस प्रणाली की उचित व्याख्या का एक हिस्सा है क्योंकि पोषक तत्वों की परस्पर क्रियाएँ फसल की उपज और गुणवत्ता निर्धारित करती हैं। पोषक तत्व अनुपात विशेष सूचकांक प्राप्त करने में सहायक होते हैं जिन्हें "पोषक तत्व सूचकांक" या "ब्यूफिल्स पोषक तत्व सूचकांक" (इन्हे बनी द्वारा दर्शाया जाता है) कहा जाता है।

निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली (डी आर आई एस) के फायदे :

- यह आसान व्याख्या प्रस्तुत करता है; पोषक तत्वों को उनकी आवश्यकता के आधार पर वर्गीकृत करने मैं सहायक है (सबसे कम से लेकर सबसे अधिक तक); पोषक तत्वों के असंतुलन के कारण उपज सीमित होने के कारणों का पता किया जा सकता हैं, यह असंतुलन, सूचकांक (बाल्डॉक और शुल्टे, 1996) के माध्यम से कुल पौध पोषण संतुलन का निदान करता है । (डी आर आई एस) का एक अतिरिक्त लाभ, जिसे कुछ लेखकों ने मान्य किया है लेकिन अन्य ने इसका खंडन किया है, यह है कि, कुल मिलाकर, यह दूसरों की तुलना में ऊतक की उम्र बढ़ने के प्रति कम संवेदनशील है (वालवर्थ और सुमनेर, 1987)।
- इस प्रणाली में पोषक तत्व से सम्बंधित मानदंड निर्धारित करने और निदान करने में पोषक तत्वों के बीच संतुलन के महत्व को ध्यान में रखा जाता है। यह पौधे में पोषक तत्व संतुलन को मापने में मदद करता है।
- पत्तियों में पोषक तत्व की मात्रा के मानदंड सार्वभौमिक रूप से किसी विशेष फसल पर लागू किए जा सकते हैं।
- फसल विकास के विभिन्न चरणों में इसका निदान किया जा सकता है।
- पोषक तत्व अधिकता या अपर्याप्तता के कारण उपज को सीमित करने वाले पोषक तत्वों को आसानी से पहचाना जा सकता है तथा उपज के लिए पोषक तत्वों को उनके सीमित महत्व के अनुरूप क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है।

किसी विशेष फल अथवा सब्जी फसल के लिए निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली विकसित करने के लिए, निम्नलिखित आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।

1. उपज को प्रभावित करने वाले सभी संदिग्ध कारकों को ज्ञात कर परिभाषित किया जाना चाहिए।
2. उपरोक्त कारकों और उपज के बीच संबंध को वर्णित करना चाहिए ।

3. मापित मानदंड स्थापित किए जाने चाहिए।
4. विशेष परिस्थितियों के लिए उपयुक्त उपरोक्त मानदंडों के सही और विवेकपूर्ण उपयोग के आधार पर सिफारिशों को लगातार परिष्कृत किया जाना चाहिए।

निदान और अनुशंसा एकीकृत प्रणाली (डी आर आई एस विधि) : आधार

- डी आर आई एस विधि पौधों में पोषक तत्वों से सम्बंधित निदान के परिणामों को सूचकांकों के माध्यम से व्यक्त करती है, जो पौधे के पोषण संतुलन में प्रत्येक पोषक तत्व के प्रभाव को निरंतर संख्यात्मक पैमाने पर दर्शाते हैं। ये सूचकांक सकारात्मक या नकारात्मक मानों द्वारा व्यक्त किए जाते हैं, जो यह संकेत देते हैं कि संदर्भित पोषक तत्व की क्रमशः अधिकता या कमी है। पौधा में पर्याप्त पोषण संतुलन सभी पोषक तत्वों के सूचकांक की शून्य से निकटता अनुसार होता है जैसे की सूचकांक जितना शून्य के पास होगा उतना ही पोषण संतुलन ज्यादा होगा (बेवर्ली, 1991; वालवर्थ और सुमनेर, 1987)। डी आर आई एस के लिए कार्य आधार निम्नलिखित पर आधारित हैं ।
- पोषक तत्वों की मात्रा के बीच अनुपात उनकी पृथक सांद्रता मूल्यों की तुलना में पोषक तत्वों की कमी के अच्छे संकेतक होते हैं किन्तु कुछ पोषक तत्व के अनुपात अन्य अनुपातों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होते हैं ।
- अधिकतम उपज केवल तभी प्राप्त की जाती है जब महत्वपूर्ण पोषक तत्व अनुपात आदर्श मान के निकट होते हैं, जो उच्च उपज-चयनित पौध की आबादी से प्राप्त होते है ।
- किसी भी महत्वपूर्ण पोषक तत्व अनुपात का विचरण कम उपज वाली आबादी की तुलना में उच्च उपज (संदर्भ आबादी) में कम होता है, और उच्च और निम्न उपज वाली आबादी के विचरणों के बीच संबंधों का उपयोग महत्वपूर्ण पोषक तत्व अनुपातों के चयन हेतु किया जाता है
- डी आर आई एस सूचकांकों की गणना प्रत्येक पोषक तत्व के लिए अलग अलग की जाती है, किसी दिए गए पोषक तत्व अनुपात के इष्टतम मूल्य के साथ तुलना से प्राप्त औसत पोषक तत्व अनुपात विचलन द्वारा ज्ञात किया जाता है (जोन्स (1981) एवं वालवर्थ और सुमनेर (1987) ।

डी आर आई एस मानदंड

डी आर आई एस विधि के लिए पोषण निदान विधि के कार्यान्वयन के लिए पहला कदम मानकों या मानदंडों की स्थापना है । डी आर आई एस मानदंड हमेशा उच्च उपज देने वाली आबादी में प्राप्त किए जाते हैं, जिसे संदर्भ आबादी कहा जाता है यह किसी सब्जी या फलों के बगीचे हो सकते हैं , जिसे एक बड़ी आबादी से चुना जाता है। यह फसल विशेषताओं के संबंध में एक समान होना चाहिए। विभिन्न मिट्टी के प्रकारों, जलवायु और किस्मों से प्राप्त एक बड़े डेटाबेस से प्राप्त मानदंडों को आमतौर पर सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता है, और उन्हें केवल तभी प्रतिनिधि माना जाएगा जब उनमें सभी जनसंख्या परिवर्तनशीलता शामिल हो। इसलिए, इन विशेषताओं को पहले से अच्छी तरह से परिभाषित किया जाना चाहिए, और इस प्रकार, डेटाबेस बनाने के लिए एकत्र किया जाना चाहिए (लेट्श और सुमनेर, 1984)। डेटाबेस में उपज ,उपज को प्रभावित करने वाले कारक आदि से सम्बंधित आंकड़े एकत्रित कर डाटा बेस तैयार किया जाता है ।

मानदंड परिभाषा के लिए चुनी गई आबादी या डेटाबेस को दो उप-आबादी या श्रेणियों में विभाजित किया जाना चाहिए (ब्यूफिल्स, 1973; बेवर्ली, 1991; वालवर्थ और सुमनेर, 1987)। ये उप-आबादी निम्नलिखित हैं:

1. गैर-असामान्य पौधे, या संदर्भ आबादी, जो प्रतिकूल परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होती हैं और मनमाने ढंग से स्थापित स्तर से काफी अधिक उपज देती हैं;

2. असामान्य पौधे, या गैर-संदर्भ आबादी, अन्य कारकों से प्रभावित, स्थापित की तुलना में कम उपज के साथ।

सामान्य भाषा में फलोत्पादन में वृक्षों की सर्वेक्षण द्वारा आबादी का चयन किया जाता है। फिर उसे कट ऑफ उपज के आधार पर उप आबादी में बांटा जाता है। अधिक उपज आबादी और निम्न उपज आबादी में विभाजित कर लिया जाता है इनमें अधिक उपज वाली आबादी को संन्दर्भ आबादी माना जाता है (चित्र 1) ।

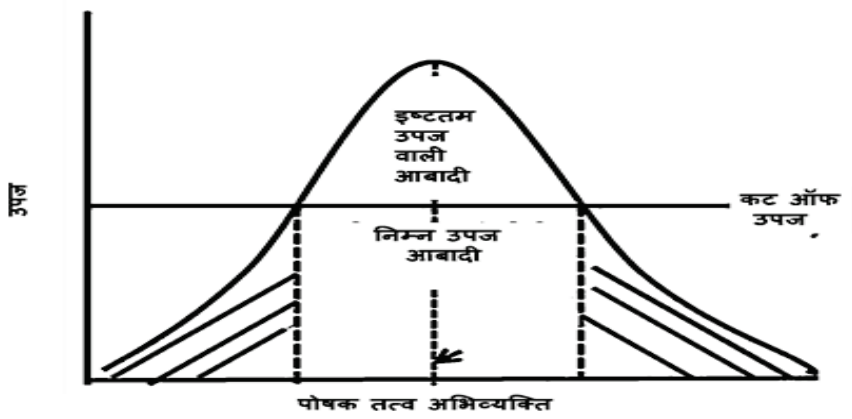

चित्र 1 : उपज के आधार पर पोषक तत्व अभिव्यक्ति

फलों के वृक्षों की किसी निश्चित अवधि या वृद्धि की अवस्था के दौरान पत्तियों के नमूनों को एकत्रित किया जाता है। पत्तियों का रासायनिक विश्लेषण करके विभिन्न पोषक तत्वों की सांद्रता को ज्ञात किया जाता है। सभी पोषक तत्वों के जोड़ों और उनके संबंधित मानक विचलन या भिन्नता के गुणांक के बीच संबंध प्राप्त किए जाते हैं। पत्तियों का रासायनिक विश्लेषण करके विभिन्न पोषक तत्वों की सांद्रता को ज्ञात किया जाता है ।

विभिन्न पोषक तत्वों के अनुपातों के औसत मान लेकर उनके मानक विचलन व् भिन्नता को निकाल लेते है। पोषक तत्वों की एक जोड़ी के बीच का अनुपात प्रत्यक्ष या व्युत्क्रम हो सकता है जैसे नाइट्रोजन और फास्फोरस की सांद्रता को एन /पी ,पी /एन, अनुपात के रूप में संबंधित किया जा सकता है।

डी आर आई एस गणना में, पोषक तत्वों के प्रत्येक जोड़े को केवल एक अभिव्यक्ति द्वारा विभेदित किया जाता है। उत्तम अभिव्यक्ति का चयन इस आधार पर किया जाता है की निम्न उपज आबादी और अधिक उपज आबादी के प्रसरण का अनुपात जिसका अभिव्यक्ति मान अधिक हो उसे उत्तम माना जाता है । पौधों के पोषण संबंधी निदान के लिए DRIS को मूल रूप से दो रूपों में लागू किया जा सकता है:

डी आर आई एस (DRIS) ग्राफ़

DRIS ग्राफ़ केवल तीन पोषक तत्वों और उनके अनुपातों के मानदंडों में लागू होते हैं (वालवर्थ और सुमनेर, 1987)। हालाँकि आरेखों या ग्राफ़ों का उपयोग तीन पोषक तत्वों के लिए निदान को सक्षम बनाता है, डरिस ग्राफ चित्र संख्या 2 में दर्शाया गया है

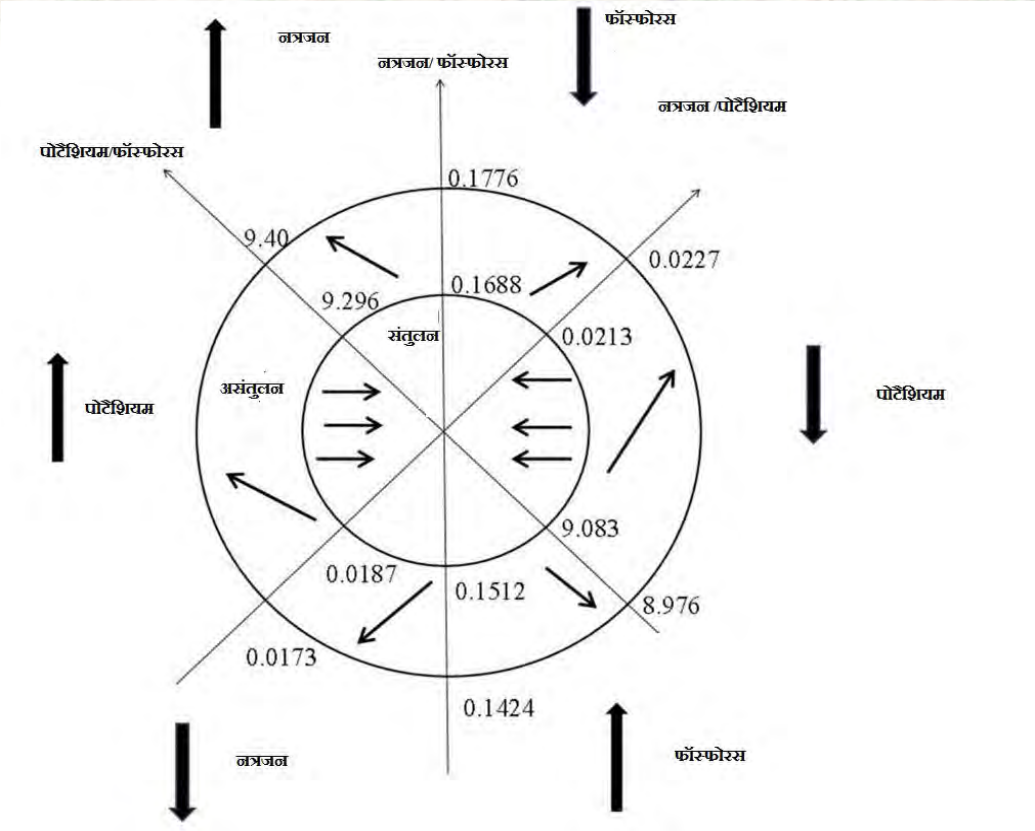

चित्र 2: डी आर आई एस ग्राफ़

पोषक तत्वों के अनुपात केंद्र से इनका औसत मान दर्शाते हैं (उच्च उपज आबादी) यह अनुपात उच्च उपज प्राप्त करने हेतु जरूरी माना जाता है। डी आर आई एस चार्ट या ग्राफ में दो संकेन्द्रीय वृत्त होते हैं आंतरिक वृत्त केंद्र से 4/3 एस डी (4/3 मानक विचलन) के मान की आबादी को दर्शाता है साथ ही तुलनात्मक रूप से संतुलित होता है यह क्षैतिज तीर के निशान से इंगित किया जाता हैा केंद्र क्षेत्र से आगे बढ़ने पर असंतुलन बढ़ता जाता है इसे दो प्रकार से दर्शाते हैं यह क्षैतिज से 45 डिग्री के तीर के निशान से दर्शाया जाता है, और बाहरी वृत्त से दर्शाया जाता है जिसका मान 8/3 एस डी से दिखाया जाता है इस वृत के बाहर असंतुलन क्षेत्र को दिखाया जाता है जो खड़े ऊपर तीर या नीचे तीर के निशान से अधिकता या ज्यादा कमी को दिखाते हैं।

डी आर आई एस सूचकांक

सूचकांक गणना (वालवर्थ और सुमनेर,1987) के लिए प्रत्येक पोषक तत्व व्यक्तिगत सूचकांक से बनता है, व इसकी गणना दो चरणों में की जाती है: पहला, प्रत्येक पोषक तत्व की जोड़ी अनुपात के लिए कार्य, और दूसरा, प्रत्येक पोषक तत्व को शामिल करने वाले कार्यों का योग। इसलिए, अगर : नत्रजन : फॉस्फोरस : पोटैशियम : मैग्नीशियम और बोरॉन पोषक तत्व को पांच पोषक तत्वों को माना जा रहा है तो इन 5 पोषक तत्वों के पोषक तत्व सूचकांक की गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है (वालवर्थ और सुमनेर, 1987):

जब P/N, p/n से बड़ा या बराबर होता है,तो अनुपात का फलन

$$P/N > p/n$$

$$f(P/N) = [\{(P/N) /(p/n)\} - 1] \times (1000/CV)$$

या, जब P/N, p/n से छोटा हो,

$$P/N < p/n$$

$$f(P/N) = [\ 1- \{(P/N) /(p/n)\} - 1] \times (1000/CV)$$

इन समीकरणों में,

P/N : निदान किए जाने वाले पौधे का ऊतक पोषक तत्व अनुपात है;

n/p : उस दिए गए अनुपात के लिए इष्टतम मूल्य या मानक है ;

CV: मानक से जुड़ा भिन्नता का गुणांक है;

अन्य कार्यों के लिए मान, जैसे कि f (N/P और f (P/K) की गणना उसी तरह से की जाती है, उपयुक्त मानदंडों और CV का उपयोग करके।

दूसरे शब्दों में, एक पोषक तत्व सूचकांक किसी दिए गए पोषक तत्व वाले अनुपातों का औसत है। इस औसत मूल्य के घटकों को उच्च उपज देने वाली आबादी (संदर्भ आबादी) के CV पारस्परिक द्वारा विचार किया जाता है। इस प्रकार, यदि N/P और N/K दोनों का उपयोग N पोषक तत्व के लिए एक सूचकांक बनाने के लिए किया जाता है।

- **N सूचकांक** = [f (N/P) + f (N/K) + f (N/Mg) – f (B/N)]/ 4
- **P सूचकांक** = [– f (N/P) – f (K/P) – f (Mg/P) – f (B/P)] 4
- **K सूचकांक** = [– f (N/K) + f (K/P) + f (K/Mg) – f (B/K)]/ 4
- **Mg सूचकांक** = [– f(N/Mg) + f(Mg/P) – f (K/Mg) – f(B/Mg)] /4
- **B सूचकांक** = [f (B/N) + f (B/P) + f (B/K) + f (B/Mg)] /4

N : नत्रजन ,P :फॉस्फोरस ,K :पोटैशियम
Mg:मैग्नीशियम ,B :बोरॉन

डी आर आई एस विवेचना :

प्रत्येक पोषक तत्व के सूचकांक पर आधारित है। सूचकांक का मान धनात्मक होने पर किसी पोषक तत्व की अधिकता को बताता है व ऋणात्मक मान पोषक तत्व की कमी को दर्शाता है जब यह मान शून्य के निकट होता है तो पोसक तत्वों के संतुलन को बताता है। अधिक ऋणात्मक मान वाले सूचकांक के पोषक तत्व को कम ऋणात्मक मान के पोषक तत्व की तुलना मे प्रबंधन हेतु प्राथिमकता दी जानी चाहिए । इस तरह पोषक तत्वों के प्रबंधन हेतु एक क्रम तैयार हो जाता है जो यह निर्धारित करता है की किन पोषक तत्वों के प्रबंधन को प्राथमिकता दी जाती है उदहारण के लिए यदि नत्रजन के सूचकांक का मान अगर -6 है ,जस्ते के मान -3 और पोटैशियम के मान -3 है तो प्रबंधन हेतु प्राथमिकता के क्रम नत्रजन>जस्ता>पोटैशियम होगा। बेहेरा व सहयोगी, 2019 द्वारा आयल पाम के शोध से प्राप्त परिणाम चित्र में वर्णन किया गया है।

चित्र 3: आयल पाम के शोध से प्राप्त परिणाम डी आर आई एस विवेचना

विभिन्न बागवानी फसलों पर डी आर आई एस पद्धति का अनुप्रयोग डी आर आई एस का अनुप्रयोग पोषण निदान हेतु विभिन्न फलों , सब्जियों आदि मैं डरिस मानदंडों का निर्धारण कर पोषक तत्वों के आवश्यकता के अनुरूप क्रम को निर्धारित किया गया है जो भली प्रकार से पोषण निदान मैं सहायक साबित हुए हैं (तालिका 2) ।

तालिका 2: विभिन्न बागवानी फसलों पर डी आर आई एस पद्धति का अनुप्रयोग

क्रम संख्या	बागवानी फसलें	सन्दर्भ
1	लेटयूस	(सांचेज़ एट अल., 1991)
2	टमाटर	(कैरन और पैरेंट, 1989; कैरन एट अल., 1991; हट्र्ज एट अल., 1998; पैरेंट एट अल., 1993; रूइन एट अल., 1988; मेफील्ड एट अल., 2002)
3	आलू	(मैक के एट अल., 1987; 1989; मेल्डल-जॉनसन और सुमनेर, 1980; नव्वाब्ज़देह और मालाकौटी, 1993; पैरेंट एट अल., 1994ए)
4	खीरा	(मेफील्ड एट अल., 2002)
5	गाजर	(पैरेंट एट अल., 1994बी
6	चेरी (नेपोलियन कल्टीवेर)	(डेवी एट अल., 1986)
7	क्रिसमस पाइन	(एबिस फ्रेसेरी) (राथफॉन और बर्गर, 1991a; 1991b; अर्नोल्ड एट अल., 1992)
8	अंगूर	(शैलर और लोहनेट्र्ज, 1984)
9	सेब	स्ज़ूक्सएट अल., 1990)
10	आड़ू	(सांज एट अल., 1992)
11	आम (अल्फांसो किस्म)	(रघुपति और भार्गव, 1999)
12	रंगपुर लाइम	मोराओ फिल्हो और एज़ेवेदो (2003)
13	अनार (पुनिका ग्रेनेटम , एल.)	(रघुपति और भार्गव, 1998)
14	'वर्ना' नींबू	(सेरडा एट अल., 1995)

पश्चिमी राजस्थान के जल संसाधनों की वर्तमान स्थिति: चुनौतियां एवं संभावनाएं

राजेश कुमार गोयल एवं महेश कुमार गौड़

भाकृअनुप- केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

भारत में विश्व की कुल जनसंख्या का 16% निवास करती है, तथा विश्व के 2.45% भूमि संसाधन एवं 4% जल संसाधन हैं। भारत के भूभाग पर वर्षा और हिमपात के रूप में औसत वार्षिक वर्षा 4000 घन किलोमीटर (किमी) है। उपलब्ध समस्त जल उपयोग योग्य नहीं है। राष्ट्रीय आयोग के अनुसार देश के वार्षिक 'उपयोग योग्य' जल संसाधन 690 घन किमी. सतही जल तथा 396 घन किमी. भूजल हैं । विभिन्न अनुमानों के अनुसार वर्ष 2050 तक देश की कुल जल आवश्यकता 'न्यून' तथा 'उच्च' मांग अनुमानों के अंतर्गत 973 से 1180 घन किमी. होगी। हालांकि, देश में पानी की उपलब्धता में समय और स्थान दोनों पर व्यापक भिन्नताएं हैं। स्थानिक रूप से, वर्षा में व्यापक अंतर है - राजस्थान में 100 मिमी. से लेकर मावसिनराम (मेघालय) में 11,873 मिमी तक। पानी की उपलब्धता में क्षेत्रीय असंतुलन का राजस्थान जैसे कुछ राज्यों पर अधिक प्रभाव पड़ेगा।

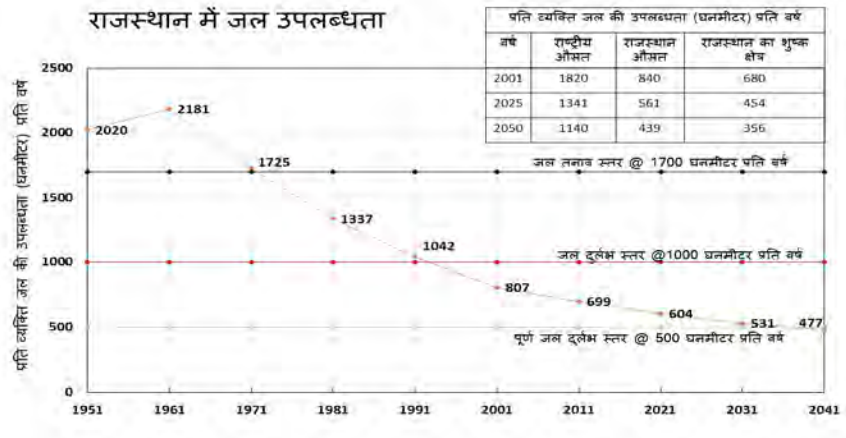

चित्र-1 राजस्थान में जल उपलब्धता

राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य है, जिसका क्षेत्रफल देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 10 प्रतिशत है और देश की कुल जनसंख्या का 5.7 प्रतिशत है। राजस्थान देश का 7वां सबसे अधिक आबादी वाला राज्य है। राज्य के पास भारत के सतही जल का केवल 1.16% और भूजल संसाधनों का 1.70% है। राजस्थान की नदियाँ वर्षा पर निर्भर हैं । राजस्थान पश्चिमी क्षेत्र के एक बड़े भूभाग में कोई परिभाषित जल निकासी बेसिन नहीं है। राज्य में कुल वर्षा चरम पश्चिमी भाग में 100 मिमी. से लेकर राज्य के पूर्वी और दक्षिणी भाग में लगभग 1000 मिमी. तक होती है। राज्य की कुल औसत वार्षिक वर्षा 531 मिमी. है और यह राजस्थान के पश्चिमी भागों के लिए 318 मिमी. है। इस प्रकार पूरे राजस्थान राज्य को 1991 से देश में सबसे शुष्क और पानी की कमी वाले (प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 1000 घन मीटर प्रतिवर्ष) राज्य के रूप में वर्गीकृत किया जा रहा है (चित्र-1) । विभिन्न क्षेत्रों से लगातार बढ़ती पानी की मांग के कारण गहरे कुओं से भूजल का अत्यधिक दोहन मौजूदा दुर्लभ जल संसाधनों पर भारी दबाव डाल रहा है। इसके अलावा, बड़ी और छोटी औद्योगिक इकाइयों द्वारा प्रदूषण भी प्रमुख क्षेत्रों में पानी की गुणवत्ता की समस्या को बढ़ाता है।

पश्चिमी राजस्थान में भूजल का वर्तमान परिदृश्य

सतही जल की कमी के कारण, शुष्क राजस्थान काफी हद तक भूजल संसाधनों पर निर्भर है। वर्षा में भिन्नता का गुणांक 60 से 80% तक है। वर्षा की कुल मात्रा 196 बीसीएम है। वार्षिक वर्षा का लगभग 80% वाष्पीकरण और रिसाव के रूप में नष्ट हो जाता है और 7% से कम भूजल के पुनर्भरण में योगदान देता है, और 13% से थोड़ा अधिक अपवाह उत्पन्न करता है। कुल उपलब्ध सतही और भूजल संसाधनों में से, कुल पानी का बड़ा हिस्सा सिंचाई के लिए (> 85%) कृषि के लिए उपयोग किया जाता है और आने वाले 4 दशकों में कृषि पानी की मांग का एक प्रमुख क्षेत्र बना रहेगा। वर्तमान में राज्य के 12 जिलों में 115 भूजल ब्लॉक है और इन ब्लॉकों में केवल 24 ब्लॉक ही सुरक्षित श्रेणी में है बाकी 91 ब्लॉक अर्ध गंभीर और अति दोहित की श्रेणी में आते हैं (चित्र-2)। सिंचाई के लिए भूजल की भारी निकासी के परिणामस्वरूप हर साल भूजल स्तर में 0.5 से 0.7 मीटर की कमी हो रही है।

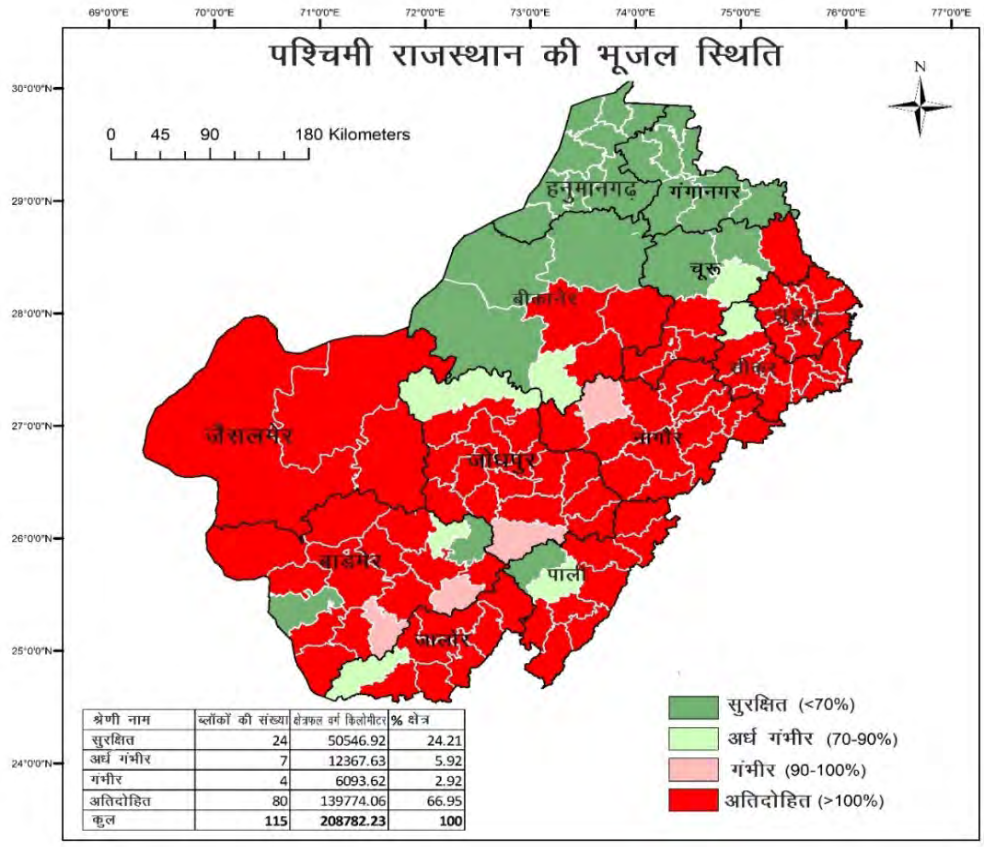

श्रेणी नाम	ब्लॉकों की संख्या	क्षेत्रफल वर्ग किलोमीटर	% क्षेत्र
सुरक्षित	24	50546.92	24.21
अर्ध गंभीर	7	12367.63	5.92
गभीर	4	6093.62	2.92
अतिदोहित	80	139774.06	66.95
कुल	115	208782.23	100

चित्र-2 पश्चिमी राजस्थान में भूजल का वर्तमान परिदृश्य

खोदे गए बोर/ट्यूबवेल की संख्या में खतरनाक दर से वृद्धि हो रही है, जिससे भूजल स्तर में व्यापक कमी आ रही है और भूजल की गुणवत्ता में भी गिरावट आ रही है। भारत में कृषि क्षेत्र में कुल जल उपयोग का 89% से अधिक हिस्सा है। भूजल सिंचाई की 61.6% मांग को पूरा करता है। पश्चिमी राजस्थान में कुओं सहित कुल कुओं की संख्या 1971-72 में 1,23,051 से बढ़कर वर्ष 2014-15 में 6,10,992 हो गई है। लगभग 4 दशकों की अवधि में कुओं की संख्या में 396.5% की वृद्धि देखी गई, जो कि वार्षिक वृद्धि 9.91% है। कुओं और ट्यूबवेल की संख्या में व्यापक वृद्धि को गहरे कुओं की ड्रिलिंग तकनीक में तकनीकी प्रगति और राजस्थान के शुष्क क्षेत्र के अधिकांश हिस्सों में बिजली की उपलब्धता द्वारा समर्थित किया गया था। सबसे अधिक कुआं घनत्व (प्रति 1000 वर्ग किमी में कुओं की संख्या) जालौर जिले में (40.4%) देखा गया, जहां भूजल की गुणवत्ता अच्छी है और सबसे कम चूरू जिले में (8.1%) देखा गया, जहां भूजल की गुणवत्ता बहुत खराब है। भूजल विकास की पिछली वृद्धि दर (औसत वृद्धि दर @ 3.20% वार्षिक चक्रवृद्धि) को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2030, 2040 और 2050 के लिए भूजल उपयोग का भविष्य का अनुमान लगाया गया है (तालिका-1)। अनुमान से पता चलता है कि भूजल संसाधन की स्थिति बहुत ही गंभीर स्थिति प्रस्तुत करती है ।

तालिका-1. पश्चिमी राजस्थान में भूजल की अनुमानित मांग

भूजल उपयोग	वर्ष				
	2010	2020	2030	2040	2050
उपयोग योग्य भूजल पुनर्भरण (एमसीएम)	3517	3517	3517	3517	3517
शुद्ध भूजल उपयोग (एमसीएम)	5686	7792	10677	14630	20046
शेष भूजल (एमसीएम)	-2169	-4275	-7160	-11113	-16529
भूजल विकास चरण (%)	161.7	221.6	303.6	416.0	570.0

भूजल के व्यापक प्रसार और गहरे स्तरों से अंधाधुंध दोहन के कारण भूजल स्तर में तीव्र गिरावट आई है और भूजल की गुणवत्ता में गिरावट आई है।

कृत्रिम भूजल पुनर्भरण और आकस्मिक बाढ़ की प्रबंधन संभावनाएँ

अनुमान है कि पिछले 20 वर्षों में राजस्थान के भारतीय शुष्क क्षेत्र में लगभग 30.3 बिलियन क्यूबिक मीटर स्थिर भूजल भंडार का दोहन किया गया है, जिसे प्राकृतिक पुनर्भरण प्रक्रियाओं से भरना मुश्किल है। कृत्रिम पुनर्भरण संरचनाओं के विभिन्न प्रयोगों और निर्माणों से पता चला है कि विभिन्न जल विज्ञान स्थितियों के तहत भूजल को पुनर्भरण करना संभव होगा। जलग्रहण क्षेत्र में एनीकट, ढीले पत्थर के चेक डैम, ब्रश वुड चेक डैम आदि जैसे संरक्षण उपायों को अपनाने से भूजल स्तर में प्रतिवर्ष 0.33 से 0.75 मीटर की दर से पुनर्भरण/वृद्धि हुई है। ओसियन-बिगमी (1991-96) में एक अन्य अध्ययन क्षेत्र में, ढीले पत्थर के चेक डैम, वनस्पति अवरोध और एनीकट जैसे संरक्षण उपायों के परिणामस्वरूप भूजल स्तर में 1.1 मीटर की वृद्धि हुई, जो भूजल के पुनर्भरण के लिए संरक्षण उपायों की प्रभावशीलता को दर्शाता है। अल्पकालिक धाराओं के पार निर्मित उप-सतही अवरोध भूजल जलभृत को पुनर्भरण करने के लिए उप-सतही प्रवाह को रोकते हैं। दीर्घकालिक वर्षा डेटा और जल संतुलन अध्ययनों के विश्लेषण से पता चला है कि दस साल में एक बार होने वाली अचानक बाढ़ से 2100 - 6200 x 106 घन मीटर अतिरिक्त पानी उत्पन्न हो सकता है। यदि इस अतिरिक्त पानी को भूजल को रिचार्ज करने के लिए प्रबंधित किया जाता है, तो समाप्त हो चुके जलभृतों का एक हिस्सा पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

वर्षा जल संचयन के लिए नीतिगत हस्तक्षेप

- जलग्रहण क्षेत्र वर्षा जल संचयन प्रणाली का एक अभिन्न अंग है। नाड़ी, खड़ीन, गांव के तालाब आदि जैसे प्राकृतिक जल निकायों के जलग्रहण क्षेत्रों में अतिक्रमण के कारण अपवाह कम हो गया है। इन अतिक्रमणों को साफ करने की आवश्यकता है।
- समय के साथ, जलग्रहण क्षेत्रों से लगातार गाद आने के कारण अधिकांश सामुदायिक जल संचयन संरचनाएं जैसे नाड़ी, खड़ीन, गांव के तालाब आदि गाद से भर गए। इन संरचनाओं की जल भंडारण क्षमता काफी हद तक कम हो गई है। इन जल निकायों को नियमित आधार पर साफ करने की आवश्यकता है और गाद निकालने की गतिविधि को ग्रामीण विकास मंत्रालय की मनरेगा/अन्य योजनाओं के साथ जोड़ा जा सकता है।
- खुले जल निकायों से रिसाव और वाष्पीकरण से होने वाली हानियाँ 50% से अधिक हैं। एलडीपीई लाइनिंग द्वारा रिसाव हानियों को नियंत्रित करने और संरचना की ज्यामिति और आसपास के सूक्ष्म जलवायु में सुधार करके वाष्पीकरण हानियों को नियंत्रित करने की आवश्यकता है।
- सूक्ष्म सिंचाई के माध्यम से सिंचित क्षेत्रों में परिवहन और अनुप्रयोग हानियों में कमी।
- जल के प्रत्येक स्रोत के लिए जल स्वास्थ्य कार्ड (डब्ल्यूएचसी) उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- खारे भूजल का कुशल उपयोग संयुक्त उपयोग के माध्यम से किया जाना चाहिए।

उपसंहार

आने वाले चार दशकों में मानव और पशुधन की बढ़ती आबादी और उसके भोजन और चारे की मांग को देखते हुए पानी सबसे दुर्लभ वस्तु होगी। जनसंख्या वृद्धि के अलावा, तेजी से औद्योगिकीकरण विभिन्न क्षेत्रों के लिए पानी की उपलब्धता पर और अधिक दबाव डालेगा। यदि ग्लोबल वार्मिंग शुरू हो जाती है तो पानी की आवश्यकता बढ़ जाएगी जबकि बारिश के मामले में पानी की उपलब्धता थोड़ी कम हो सकती है। इसलिए निम्नलिखित के लिए विकसित तकनीक की आवश्यकता होगी:

- बेहतर मौसम पूर्वानुमान के साथ अचानक बाढ़ के पानी का प्रबंधन
- वाष्पीकरण के नुकसान को कम करने के लिए व्यावहारिक तकनीक
- सिंचाई के पानी की मांग को पूरा करने के लिए वास्तविक समय भूजल मॉडलिंग
- सड़क के किनारे जलग्रहण और अन्य क्षेत्रों के माध्यम से कुशल भूजल पुनर्भरण
- ग्रीन हाउस के तहत बड़े पैमाने पर खेती
- औद्योगिक अपशिष्टों का शून्य निर्वहन/कुशल पुनर्चक्रण
- समुद्री जल उपचार/शुद्धिकरण के लिए किफायती और व्यवहार्य तकनीकें
- वाटरशेड प्रबंधन के लिए नए उपकरण और तकनीक

सूक्ष्मजीवों द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन: एक स्थायी कृषि तकनीक

आशा साहू, सुदेशना भट्टाचार्य, ज्योति कुमार ठाकुर, के भारती, असित मंडल, एस आर मोहंती, अबिनाश दास, एम एच देवी एवं ए के त्रिपाठी

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)

सतत कृषि की खोज में, फसल अवशेषों का प्रबंधन एक महत्वपूर्ण चिंता का विषय बन गया है। हर साल लगभग 998 मिलियन टन कृषि अवशेष उत्पन्न होता है। टिकाऊ कचरा निपटान विधियाँ अस्सी प्रतिशत जैविक कचरे को 5.27 किग्रा/दिन/1000 किग्रा वज़न के आधार पर जैविक खाद में परिवर्तित कर सकती हैं। कृषि कचरे के प्रभावी प्रबंधन के लिए, कृषि अपशिष्ट प्रबंधन दृष्टिकोणों के विकास की आवश्यकता है जो टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल दोनों हों। कृषि-कचरे का अनुचित निपटान विभिन्न स्वास्थ्य और पर्यावरणीय मुद्दों को जन्म दे सकता है, जिससे एक सुरक्षित निपटान विधि का महत्व बढ़ जाता है। फसल अवशेषों को जलाने की पारंपरिक प्रथा न केवल वायु प्रदूषण में योगदान करती है बल्कि मूल्यवान कार्बनिक पदार्थ और आवश्यक पोषक तत्वों के नुकसान का भी कारण बनती है। एक पर्यावरण-अनुकूल विकल्प के रूप में, सूक्ष्मजीव संघ फसल अवशेषों के अपघटन के लिए एक आशाजनक समाधान के रूप में उभरे हैं। विविध सूक्ष्मजीव समुदायों से बने ये संघ, जटिल कार्बनिक पदार्थों को सरल यौगिकों में तोड़ने, पोषक तत्वों के साथ मिट्टी को समृद्ध करने और एक स्वस्थ कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सूक्ष्मजीव संघों को समझना:

सूक्ष्मजीव संघ विभिन्न सूक्ष्मजीवों के समुदाय हैं जो विशिष्ट कार्यों को करने के लिए सहक्रियात्मक रूप से काम करते हैं। फसल अवशेष अपघटन के संदर्भ में, इन संघों में बैक्टीरिया, कवक और अन्य सूक्ष्मजीव शामिल होते हैं जो जटिल कार्बनिक पदार्थों को तोड़ने के लिए सहयोग करते हैं। संघ के प्रत्येक सदस्य के पास एंजाइमों और चयापचय मार्गों का एक अनूठा सेट होता है, जो उन्हें फसल अवशेषों के विशिष्ट घटकों को कुशलतापूर्वक विघटित करने में सक्षम बनाता है।

क्रिया में विविधता:

सूक्ष्मजीव संघों का उपयोग करने के प्रमुख लाभों में से एक उनकी विविधता में निहित है। विभिन्न फसलें सेलुलोज, लिग्निन, हेमिसेलुलोज और अन्य कार्बनिक यौगिकों सहित विभिन्न संरचनाओं वाले अवशेष उत्पन्न करती हैं। एक विविध सूक्ष्मजीव संघ यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक घटक को तोड़ने में सक्षम विशिष्ट सूक्ष्मजीव मौजूद हैं, जिसके परिणामस्वरूप अधिक प्रभावी अपघटन होता है। सेल्युलोलिटिक बैक्टीरिया, सेलुलोज को तोड़कर प्रक्रिया शुरू करते हैं, जबकि कवक, विशेष रूप से लिग्निनोलिटिक कवक, लिग्निन युक्त अवशेषों को विघटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक्टिनोमाइसेट्स जटिल कार्बनिक अणुओं के अपघटन में योगदान करते हैं, और इन सूक्ष्मजीव समूहों के बीच सहक्रियात्मक अंतःक्रिया समग्र अपघटन दक्षता को बढ़ाती है।

उन्नत पोषक तत्व चक्र:

सूक्ष्मजीव संघ न केवल फसल अवशेषों के टूटने को सुगम बनाते हैं बल्कि मिट्टी में पोषक तत्व चक्र में भी योगदान करते हैं। अपघटन प्रक्रिया के दौरान, सूक्ष्मजीव एंजाइम छोड़ते हैं जो कार्बनिक पदार्थों को सरल रूपों में तोड़ते हैं, जिससे पौधों के लिए पोषक तत्व अधिक सुलभ हो जाते हैं। यह मिट्टी की पोषक तत्व सामग्री को बढ़ाता है, बेहतर फसल वृद्धि को बढ़ावा देता है और बाहरी उर्वरकों की आवश्यकता को कम करता है।

पर्यावरणीय लाभ:

फसल अवशेष अपघटन के लिए सूक्ष्मजीव संघों का उपयोग कई पर्यावरणीय लाभ प्रदान करता है। जलाने के विपरीत, जो वातावरण में हानिकारक प्रदूषकों को छोड़ता है, सूक्ष्मजीव अपघटन एक स्वच्छ और टिकाऊ प्रक्रिया है। यह मिट्टी की संरचना को बनाए रखने, कटाव को रोकने और वायु गुणवत्ता पर अवशेष जलाने के नकारात्मक प्रभाव को कम करने में मदद करता है। इसके अतिरिक्त, मिट्टी में बचा हुआ कार्बनिक पदार्थ इसकी जल धारण क्षमता में सुधार करता है, जिससे बेहतर जल प्रतिधारण और सिंचाई की आवश्यकताओं में कमी आती है।

व्यवहार में अनुप्रयोग:

किसान विभिन्न तरीकों से फसल अवशेष अपघटन के लिए सूक्ष्मजीव संघों को अपना सकते हैं। इन संघों को फसल अवशेषों के साथ मिट्टी में शामिल करना, या उन्हें जैव-टीकाकरण के रूप में उपयोग करना, सामान्य प्रथाएँ हैं। इसके अतिरिक्त, सूक्ष्मजीव संघों को खाद बनाने वाले एजेंटों के रूप में लागू किया जा सकता है, जो अपघटन प्रक्रिया को तेज करते हैं और मिट्टी के संवर्धन के लिए पोषक तत्वों से भरपूर खाद का उत्पादन करते हैं।

भाकृअनुप - भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल द्वारा विकसित एक्सेल डीकम्पोजर चार कवकों (प्रत्येक कैप्सूल में एक कवक प्रजाति होती है) का एक सूक्ष्मजीव संघ है, जिसमें फसल अवशेषों को यथास्थान या ऑफ-साइट तेजी से विघटित करने की क्षमता होती है।

एक्सेल डीकम्पोजर कैप्सूल का उपयोग कैसे करें

खेत में यथास्थान फसल अवशेष अपघटन के लिए:

- एक हेक्टेयर खेत में फसल अवशेष के यथास्थान अपघटन के लिए, प्रत्येक कल्चर के पांच कैप्सूल (कुल 20 कैप्सूल) की आवश्यकता होती है।
- कैप्सूल को 50 लीटर पानी में 500 ग्राम गुड़ डालकर और 5 मिनट तक उबालकर सक्रिय किया

जाता है, फिर इस घोल में 500 ग्राम गेहूं का चोकर मिलाया जाता है।

- ठंडा होने के बाद, प्रत्येक जीव के पांच कैप्सूल इस चोकर-चीनी के घोल में डाल दिए जाते हैं।
- घोल को ढककर कल्चर के सक्रियण के लिए 6 दिनों के लिए छोड़ दिया जाता है।
- सक्रिय कवक घोल को खेत में फसल अवशेष पर छिड़का जा सकता है।
- चूंकि फसल अवशेष का C:N अनुपात व्यापक होता है, इसलिए खेत में अवशेष पर 30 किग्रा/हेक्टेयर यूरिया फैलाया जाता है और रोटावेटर का उपयोग करके पूरी सामग्री को खेत में मिला दिया जाता है।
- खेत को तुरंत सिंचित किया जाता है और 30 दिनों के लिए अपघटन के लिए छोड़ दिया जाता है।
- यदि संभव हो, तो अपघटन प्रक्रिया को तेज करने के लिए खेत में 4 टन/हेक्टेयर ताजा पशु गोबर डाला जा सकता है।
- कल्चर लगाने के 30 दिन बाद अगली फसल की बुवाई की जा सकती है।
- बीज को कार्बेन्डाजिम @2 ग्राम/किग्रा बीज से उपचारित किया जाता है।

खाद के गड्ढे में प्रयोग:

- गड्ढे में प्रयोग के लिए (आकार 10'x4'x3' लंबाई x चौड़ाई x ऊंचाई, 800 से 1000 किग्रा बायोमास समायोजित करना), चार कैप्सूल, प्रत्येक कवक कल्चर का एक, पर्याप्त है।
- 10 लीटर गर्म पानी में, 100 ग्राम गुड़ घोला जाता है और इस घोल में 100 ग्राम गेहूं का चोकर मिलाया जाता है।
- घोल को ठंडा करने के बाद इस चोकर-चीनी के घोल में चार कैप्सूल डाले जाते हैं।
- घोल को ढककर कवक कल्चर की वृद्धि के लिए 6 दिनों के लिए छोड़ दिया जाता है और फिर गड्ढे में खाद बनाने वाली सामग्री पर छिड़का जाता है।
- प्रत्येक परत में सामग्री का क्रम इस प्रकार होना चाहिए:

  गोबर---- सक्रिय कवक कल्चर---- फसल अवशेष---- यूरिया
- गड्ढे में इसी क्रम में एक और परत बनाई जाती है।
- बायोमास के 1 किग्रा/क्विंटल पर यूरिया मिलाया जाता है।
- कल्चर डालने के बाद सबसे ऊपरी परत को फसल बायोमास की पतली परत से ढक दिया जाता है और अपघटन को सुगम बनाने के लिए पानी अच्छी तरह से (बायोमास का 60-70%) डाला जाता है।
- 15 दिनों में दो बार पलटाई करनी होती है, खेत में प्रयोग से पहले इसे सुखाया जा सकता है।

यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि खाद किसी भी दुर्गंध से मुक्त हो और उसका रंग गहरा भूरा हो जाए।

सावधानियां:

- कैप्सूल को सीधी धूप से दूर रखें और ठंडी जगह पर स्टोर करें।
- कैप्सूल सामग्री को मानव संपर्क या खुले घाव में न डालें, न खाएं और न ही सूंघें।
- कैप्सूल को इस्तेमाल करते समय दस्ताने और मास्क पहनें।

ये डीकंपोजर एक उदाहरण हैं कि कैसे कृषि और पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के लिए सूक्ष्मजीव प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा सकता है। किसानों द्वारा इसका अपनाया जाना टिकाऊ कृषि प्रथाओं, अपशिष्ट प्रबंधन और कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के समग्र कल्याण में योगदान देता है। किसी भी तकनीक की तरह, इसकी प्रभावशीलता अनुप्रयोग विधियों, पर्यावरणीय परिस्थितियों और इसके उपयोग के विशिष्ट संदर्भ जैसे कारकों के आधार पर भिन्न हो सकती है। बाजार में कई सूक्ष्मजीव डीकंपोजर उत्पाद उपलब्ध हैं, जिनमें से प्रत्येक का अपना निर्माण और विशिष्ट अनुप्रयोग हैं। इन उत्पादों को अक्सर फसल अवशेषों सहित कार्बनिक पदार्थों के अपघटन को तेज करने और मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए विकसित किया जाता है।

स्वावलंबी लघुधारक कृषक प्रणालियों के पुनर्निर्माण में जैव-गतिकीय/ बायोडायनामिक (बीडी) विधियों का महत्व

शिनोजी के सी, दिनेश कुमार यादव, रश्मी आई, संजय श्रीवास्तव, ज्योति कुमार ठाकुर, भारत प्रकाश मीना, गुरव प्रिया पांडुरंग एवं अभय ओ. शिराले

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

भूमि संरक्षण, टिकाऊ भूमि प्रबंधन और पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रथाओं के माध्यम से मिट्टी की गुणवत्ता को पुनर्स्थापित करने के लिए वैश्विक आह्वान के जवाब में, वर्षों से विश्व कृषि प्रणाली में कई वैकल्पिक कृषि मॉडल जोड़े गए हैं। ये मॉडल, जैसे कि सटीक कृषि, जैविक खेती, संरक्षण कृषि, कृषि वानिकी, प्राकृतिक खेती, और पुनर्योजी कृषि, जो संसाधनों के कुशल उपयोग, जैव विविधता को बढ़ावा देने, और पर्यावरणीय क्षरण को कम करने की दिशा में काम करते हैं। पारंपरिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकों के एकीकरण के माध्यम से, ये प्रथाएँ सतत उत्पादकता सुनिश्चित करने के साथ-साथ पारिस्थितिक तंत्र के दीर्घकालिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक होती हैं। बायोडायनामिक खेती की विधि इनमें से एक है।

लगभग एक सदी पहले ऑस्ट्रियाई दार्शनिक रुडोल्फ स्टाइनर द्वारा जर्मनी में छह यूरोपीय देशों के प्रकृति-प्रेमी किसानों के एक समूह को प्रस्तुत की गई जैव-गतिकीय (बायोडायनामिक) विधियाँ, जिन्हें उनके शिष्य और जर्मन मृदा वैज्ञानिक एहरनफ्राइड फेफर ने बायोडायनामिक खेती की विधि के रूप में लोकप्रिय बनाया, लेकिन इसकी प्रसार प्रक्रिया के दौरान दुनिया के विभिन्न हिस्सों में कई लोगों द्वारा इसको सूडोसाइंस(छद्मविज्ञान)करार दिया गया है। हालांकि, यह कृषि मॉडल, जिसे जैविक कृषि का उन्नत संस्करण माना जाता है, पूरी तरह से प्राकृतिक तैयारियों के उपयोग पर जोर देता है और कृषि रसायनों से पूरी तरह बचाव करता है। अब तक, इस मॉडल ने 65 देशों में अपनी पहचान स्थापित की है, जिसमें 7,000 से अधिक किसान इसका पालन कर रहे हैं व 251,842 हेक्टेयर प्रमाणित बीडी क्षेत्र शामिल है।जर्मनी 84,426 बीडी हेक्टेयर क्षेत्रफल के साथ जैव-गतिकीय कृषि में शीर्ष पर है, इसके बाद ऑस्ट्रेलिया 49,797 बीडी हेक्टेयर क्षेत्रफल के साथ दूसरे स्थान पर है, जबकि भारत 9,303 बीडी हेक्टेयर क्षेत्रफल के साथ इस सूची में पांचवें स्थान पर है (पॉल और हेनिंग, 2020)।बायोडायनामिक फेडरेशन डेमेटर इंटरनेशनलके डेटाबेस के अनुसार, यूरोपीय देश जैव-गतिकीय कृषि के केंद्र के रूप में उभर कर सामने आए हैं। लगभग 36 देशों के किसान देश स्तर की बायोडायनामिक संगठनों के तहत संगठित हैं।

बायोडायनामिक खेती विभिन्न पर्यावरण-अनुकूल खेती के तरीकों में सबसे कड़े प्रमाणन मानकों (इंटरनेशनल डेमेटर बायोडायनामिक स्टैंडर्ड) का पालन करती है और लगभग बीस देशों में अपने स्वयं के डेमेटर प्रमाणन निकाय हैं। भारत में बायोडायनामिक एसोसिएशन ऑफ इंडिया (बीडीएआई)की स्थापना वर्ष 1999 में की गई थी, जिसका पंजीकृत कार्यालय बेंगलुरु, कर्नाटक में स्थित है। देश में बायोडायनामिक खेती के लिए प्रमाणन एजेंसी 'डेमेटर इंडिया' है।

बायोडायनामिक खेती: सिद्धांत और अभ्यास

बायोडायनामिक खेती में मिट्टी को सबसे महत्वपूर्ण घटक माना जाता है क्योंकि यह हमारे खाद्य उत्पादन प्रणाली की आधारशिला है। इसलिए, सभी जैविक और बायोडायनामिक प्रक्रियाओं को इस प्रकार समन्वित किया जाता है कि उनका संयुक्त प्रभाव बायोडायनामिक खेती में मिट्टी के स्वास्थ्य की पुनर्स्थापना में सहायक हो। बायोडायनामिक (बीडी) खेती में जैविक प्रथाओं में कई लोकप्रिय पर्यावरण-अनुकूल विधियाँ शामिल

होती हैं, जैसे मिश्रित खेती, फसल अपशिष्ट को खाद बनाकर पुनर्चक्रण, कवर फसलें उगाना, हरी खाद डालना, फसल चक्र अपनाना और सहचर पौधों की खेती।

पृथ्वी की प्राकृतिक लय के साथ बायोडायनामिक (बीडी) खेती को संरेखित बनाए रखने के लिए अपनाई जाने वाली गतिशील प्रथाओं में चंद्र और खगोलीय घटनाओं के आधार पर विभिन्न प्रकार की फसलों (जैसे, जड़ वाली फसल, पत्तेदार फसल, फूल वाली फसल, फल वाली फसल आदि) की बुआई के लिए बायोडायनामिक कैलेंडर का उपयोग, विशेष बायोडायनामिक तैयारियों का उपयोग, और कीट नियंत्रण के लिए "पेपरिंग" विधि शामिल हैं।

बायोडायनामिक तैयारियाँ

इस खेती पद्धति में उपयोग किए जाने वाले बीडी 500-508 नामक तैयारियां पौधों या पशु आधारित उत्पाद हैं, जिन्हें आमतौर पर 6 महीने तक जमीन में गाड़कर और पशु अंगों के अंदर भरकर किण्वित किया जाता है। इन तैयारियों को उत्तरी गोलार्ध में सितंबर-अक्टूबर और दक्षिणी गोलार्ध में मार्च-अप्रैल, कभी-कभी मई तक जमीन में दबाया जाता है। बीडी तैयारियों का उपयोग आमतौर पर बहुत कम मात्रा में किया जाता है, चाहे मिट्टी या पत्तियों पर स्प्रे के रूप में या खाद तैयार करने में। उदाहरण के लिए, गोमूत्र खाद का उपयोग 100 ग्राम प्रति हेक्टेयर और गोमूत्र सिलिका का उपयोग 4 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से किया जाता है, जिन्हें 25 से 50 लीटर पानी में घोलकर प्रयोग किया जाता है। नौ बीडी तैयारियों और उनके लाभों का एक संक्षिप्त विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1: बायोडायनामिक तैयारियों का मिट्टी और पौधों के स्वास्थ्य के साथ संबंध

क्रमांक	बीडी तैयारियां	महत्व
1	बीडी 500-गाय के सींग की खाद	मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल करने/ पुनर्स्थापन के लिए जड़ों की सक्रियता को बढ़ावा देना, पोषक तत्वों के संतुलन को नियमित करना और मिट्टी में सूक्ष्मजीवों को सक्रिय करना।
2	बीडी 501-गाय के सींग का सिलिका	पौधों में प्रकाश चयापचय, प्रकाश संश्लेषण और क्लोरोफिल को बढ़ाता है।
3	बीडी 502- यारो के फूल (अचिलिया मिलेफोलियम)	पोटेशियम, सल्फर और सूक्ष्म तत्वों की प्रक्रियाओं से जुड़ा होता है।
4	बीडी 503 - कैमोमाइल फूल (मैट्रिकेरिया कैमोमिला)	कैल्शियम और सल्फर की प्रक्रियाओं से संबंधित है।
5	बीडी 504 - बिच्छू घास पौधा (अर्टिका डायोइका)	पोटेशियम, सल्फर, कैल्शियम और आयरन की प्रक्रियाओं से जुड़ा होता है।
6	बीडी 505 - बलूत की छाल (क्वेरकस रोबर)	यह कैल्शियम का समृद्ध स्रोत होता है। साथ ही पौधों को जैविक तनाव का सामना करने में मदद करता है।
7	बीडी 506 - डंडेलियन फूल (टैराक्सॅकम ऑफिशिनाले)	जीवित सिलिका प्रक्रियाओं से जुड़ा हुआ है, इसके अलावा यह मिट्टी में प्रकाश के प्रभावों को सक्रिय करता है।

8	बीडी 507 - वालेरियन फूल (वेलेरियाना ऑफिसिनेलिस)	फॉस्फोरस गतिविधि से संबंधित होता है एवं खाद के ढेर पर सुरक्षा परत के रूप में कार्य करता है।
9	बीडी 508 - घोड़ा घास पौधा (इक्विसेटम अर्वेन्से)	इसमें सिलिका बहुत उच्च मात्रा में होता है। यह शुरुआती अवस्था में फंगस जनित रोगों को रोकने में मदद करता है।

प्रवर्तकों के अनुसार, बायोडायनामिक बीडी तैयारियों का सहक्रियात्मक प्रभाव पौधों को मिट्टी, पानी, हवा, एवं गर्मी के साथ एक गतिशील संबंध विकसित करने में मदद करता है, ताकि वे स्वस्थ और संतुलित तरीके से बढ़ सकें, आवश्यक पोषक तत्वों का उपयोग कर सकें और कीटों, बीमारियों और अत्यधिक जलवायु परिस्थितियों के प्रति प्रतिरोधी बन सकें।

बायोडायनामिक तैयारियों में सामान्यत: पशु अंगों का उपयोग किया जाता है जैसे गाय के सींग, हिरण का मूत्राशय, गौवंश की आंत, उदर, और खोपड़ी, ताकि इन अंगों में विशेष गुणों के कारण सामग्री को पैक किया जा सके और उसे भूमिगत दफन किया जा सके। इन अंगों का चयन उनके पशु शरीर में पूर्व कार्यों के कारण विशिष्ट गुणों के लिए किया जाता है, जो इन तैयारियों में विशेष प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, 503 की तैयारी के दौरान, गाय की आंत का उपयोग सूखी कैमोमाइल फूलों को भरने के लिए किया जाता है, जिसे मिट्टी में दफन किया जाता है, क्योंकि गाय की आंत किण्वन प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए उत्प्रेरक का काम करती हैं।

जैव-गतिकीय विधियों की विशेषताएं:

1. **स्वाभाविक उर्वरक उत्पादन:** जैव-गतिकीय विधियों में गोबर, गोमूत्र और स्थानीय पौधों का उपयोग कर खाद और कीटनाशक तैयार किए जाते हैं। इससे किसानों की बाहरी संसाधनों पर निर्भरता घटती है।
2. **मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण:** इन विधियों से मिट्टी में पोषक तत्व एवं जैविक सामग्री की मात्रा संतुलित बनी रहती है।
3. **स्थानीय संसाधनों का उपयोग:** जैव-गतिकीय कृषि में स्थानीय जलवायु, मृदा और वनस्पति पर आधारित संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जाता है।
4. **पर्यावरणीय संतुलन:** यह पद्धति पर्यावरणीय नुकसान को रोकते हुए जैव विविधता को बढ़ावा देती है।

बायोडायनामिक खेती पर वैज्ञानिक सोच:

टुरीनेक एट अल. (2009) और क्रिस्टोफर एट अल. (2019) द्वारा बायोडायनामिक कृषि पर किए गए मेटा विश्लेषणों ने इस कृषि पद्धति के पारिस्थितिकी तंत्र पर लाभकारी प्रभावों के लिए पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, विशेष रूप से मिट्टी की पुनर्निर्माण, पौधों के स्वास्थ्य और खाद्य गुणवत्ता में सुधार के संदर्भ में। हालाँकि, कुछ अध्ययनों ने यह बताया कि बायोडायनामिक तैयारियों और गोबर की खाद के उपयोग से लाभकारी माइक्रोब्स की गतिविधियों को उत्तेजित करने में लगभग समान परिणाम प्राप्त हुए है (फॉस्ट एट अल., 2017)।

आईसीएआर-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान में राधा और राव (2014) द्वारा किए गए अध्ययन में पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले गुणों जैसे कि आईएए (IAA) उत्पादन, फॉस्फोरस घुलनशीलता और जैविक नियंत्रण क्षमता की पहचान की गई। यह गुण गोबर आधारित बायोडायनामिक तैयारियों, जैसे कि बीडी 500 और काऊ पैटपिट (CPP)में पाए गए। उन्होंने रिपोर्ट किया कि CPP में माइक्रोबियल बायोस्टीमुलेंट बैसिलस

लिचेनीफॉर्मिस और बीडी 500 में लाइसिनि बैसिलस साइलानिलिटिकस मौजूद थे। एक अन्य अध्ययन, जो ठाकुर एवं सहयोगी. (2018) द्वारा किया गया, ने यह रिपोर्ट किया कि बीडी 500 में फफूंदी माइक्रोबियल समूह प्रमुख था , जबकि बीडी कम्पोस्ट में एक्टिनो बैक्टीरिया प्रमुख माइक्रोबियल समूह था। उनके शोध से यह पता चला है कि बायोडायनामिक तैयारियों में गाय के गोबर खाद की तुलना में अधिक नाइट्रोजन सामग्री पाई जाती है, जैसे कि बीडी 500 में 2.1% अधिक, काऊ पैटपिट (CPP) में 1.82% अधिक और बीडी कम्पोस्ट में 1.12% अधिक।

चित्र 1 .आईसीएआर-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान भोपाल में उपयोग किए गए कुछ बायोडायनामिक तैयारी के नमूने (कुरिंजी फार्म, तमिलनाडु से लिए गए)

एक हालिया शोध रिपोर्ट में बताया गया है कि, गाय के सींग को बीडी 500 की तैयारी के लिए बहुत महत्वपूर्ण आवश्यकता बताया गया है क्योंकि सींग में मौजूद सल्फर-समृद्ध केराटिन परत खाद के परिपक्वता प्रक्रिया में मुख्य भूमिका निभाती है। केराटिन लाभकारी बैक्टीरिया और फफूंद समुदायों को बढ़ावा देता है, जिससे खाद को एक प्रोबायोटिक भोजन में बदल दिया जाता है जो मिट्टी की उर्वरता को पुनर्स्थापित करने में सहायक होता है (ज़ानार्डो एट अल., 2023)। जुकनेविसिएने और सहकर्मियों (2019) ने सींग खाद के उपयोग से मिट्टी में एंजाइमेटिक गतिविधियों में वृद्धि को बताया ।

भारत में बायोडायनामिक खेती

भारत में बायोडायनामिक खेती की अवधारणा 1990 के दशक की शुरुआत में फैलने लगी। इसका श्रेय पद्म श्रीथाचेरिलगोविंदन कुट्टी मेनन (टी.जी.के. मेनन) को जाता है, जो मध्य प्रदेश स्थित संस्था कस्तूरबा ग्राम कृषि क्षेत्र में निदेशक के रूप में कार्यरत थे। उन्होंने इस पद्धति को भारत में प्रचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाईउन्होंने 1993 में न्यूजीलैंड बायोडायनामिक एसोसिएशन के श्री पीटर प्रॉक्टर को भारत में आमंत्रित किया, ताकि किसानों को बायोडायनामिक विधि के बारे में शिक्षित किया जा सके। प्रॉक्टर और उनकी पत्नी रशेल पोमेरॉय ने तमिलनाडु, कर्नाटक और गुजरात के कई किसानों को प्रशिक्षित किया और किसानों को अपने खेतों को बायोडायनामिक मॉडल में परिवर्तित करने में मदद की। भारत में आज के प्रमुख बायोडायनामिक खेती के अभ्यासकर्ताओं में तमिलनाडु के डिंडीगुल जिले में स्थित कुरिंजी ऑर्गेनिक फूड फार्म और गुजरात के आनंद जिले में स्थित भाईकाका कृषि केंद्र शामिल हैं। इन संस्थानों को 16-20 साल पहले इस दंपति की मदद से बायोडायनामिक खेती में परिवर्तित किया गया था।

भारतीय बायोडायनामिक संघ (बीडीएआई) के आंकड़ों के अनुसार, वर्तमान में भारत में 500 से अधिक छोटे और बड़े बायोडायनामिक (बीडी) फार्म मौजूद हैं। हालांकि, इन फार्मों में से अधिकांश को औपचारिक रूप से प्रमाणित नहीं किया गया है। यहाँ विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जा रही हैं, जिनमें अनाज फसलें, फल, सब्जियाँ, मसाले और पेय फसलें शामिल हैं। ये फसलें परिवार की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा

करने के साथ-साथ घरेलू और निर्यात बाजारों को ध्यान में रखकर उगाई जाती हैं। देश में बायोडायनामिक विधियों का उपयोग कर निर्यात-उन्मुख खेती का सबसे अच्छा उदाहरण अंतर राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त "अरकूकॉफी" है, जो आंध्रप्रदेश के पूर्वी घाटों में स्थित अरकू घाटी के आदिवासी कृषि भूमि में उगाई जाती है।

1999 में अपनी स्थापना के बाद से, बीडीएआई (बायोडायनामिक एसोसिएशन ऑफ इंडिया) पूरे देश में बायोडायनामिक खेती के प्रसार का समर्थन करता रहा है। यह प्रशिक्षित बायोडायनामिक किसानों की मदद से पूरे भारत में वर्षभर प्रशिक्षण गतिविधियों का आयोजन करता है। अधिकांश प्रशिक्षण कार्यक्रम कार्यरत बायोडायनामिक फार्मों में आयोजित किए जाते हैं, जहां स्थायी किसान को प्रशिक्षकों के रूप में शामिल किया जाता है ताकि प्रतिभागियों को विभिन्न बायोडायनामिक प्रथाओं का आवश्यक व्यावहारिक अनुभव मिल सके।इन प्रयासों के बावजूद, यह कम लागत वाली पर्यावरण अनुकूल खेती की विधि भारत के अधिकांश किसानों के लिए अज्ञात है। इस खेती विधि को अपनाने में कमी का एक संभावित कारण बायोडायनामिक तैयारियों को तैयार करने में आने वाली जटिलता हो सकती है। उदाहरण के लिए, बायोडायनामिक तैयारियों को बनाने में लंबा समय और काफी प्रयास की आवश्यकता होती है। साथ ही, बायोडायनामिक कम्पोस्ट तैयारियों में उपयोग किए जाने वाले पौधे भारत के कई हिस्सों में सामान्यतः उपलब्ध नहीं हैं, और इन पौधों की खेती और प्रसंस्करण व्यक्तिगत खेत स्तर पर आसान नहीं होता है। इसके अलावा, बायोडायनामिक तैयारियों में पशु अंगों के उपयोग से जुड़ी सामाजिक वर्जनाएँ छोटे और सीमांत किसानों के लिए हतोत्साहित करने वाले तत्व हो सकती हैं, विशेष रूप से जो दूरदराज़ गांवों में रहते हैं। इस बहुत धीमी प्रसार प्रक्रिया के पीछे शायद कई अन्य कारण हो सकते हैं। अफसोस की बात है कि भारत में बायोडायनामिक खेती की विधि को अपनाने से जुड़ी समस्याओं को समझने के लिए बहुत अधिक अध्ययन अभी तक नहीं किए गए हैं।

निष्कर्ष:

भारत में बायोडायनामिक खेती के प्रसार में कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें तैयारियों की जटिलता, आवश्यक पौधों की उपलब्धता और पशु अंगों के उपयोग से जुड़ी सामाजिक वर्जनाएँ शामिल हैं। इसके बावजूद, यह एक प्रभावी और पर्यावरणीय रूप से स्थिर खेती विधि हो सकती है, यदि इसे सही तरीके से अपनाया जाए। जैव-गतिकीय विधियां न केवल एक स्थायी कृषि समाधान प्रदान करती हैं, बल्कि यह एक स्वावलंबी और सशक्त ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार भी बन सकती हैं। लघु कृषक समुदायों को इस पद्धति की ओर प्रेरित करना और इसके लिए नीतिगत समर्थन उपलब्ध कराना कृषि क्षेत्र को नई दिशा प्रदान कर सकता है।

कृषि क्षेत्र में भौगोलिक सूचना प्रणाली का उपयोग

निशा साहू, नारायण लाल एवं आशा साहू

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है क्योंकि यह कुल सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 19.9% का योगदान करती है और 60% से अधिक आबादी को रोजगार प्रदान करती है। 50% से अधिक ग्रामीण परिवार अपने जीवन यापन के लिए कृषि पर निर्भर हैं। जनसंख्या के बढ़ते दबाव और कृषि उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता के साथ, कृषि संसाधनों के बेहतर प्रबंधन की निश्चित रूप से आवश्यकता है। इसे प्राप्त करने के लिए सबसे पहले न केवल संसाधनों के प्रकार, बल्कि इन संसाधनों की गुणवत्ता, मात्रा और स्थान पर भी विश्वसनीय डेटा प्राप्त करना आवश्यक है। खाद्य सुरक्षा के मुद्दों पर सूचित निर्णय लेने के लिए समय पर कृषि संबंधित जानकारी की उपलब्धता महत्वपूर्ण है।

हाल ही में सरकार ने फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, फसल बीमा योजना, प्रति बूंद अधिक फसल आदि जैसी कुछ प्रमुख योजनाएं शुरू की हैं। इन कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए रिमोट सेंसिंग और जीआईएस जैसी नवीनतम तकनीकों का उपयोग करना महत्वपूर्ण है। रिमोट सेंसिंग डेटा प्रदान करता है और जब इन डेटा को अन्य मापदंडों के साथ जीआईएस प्लेटफॉर्म में व्यवस्थित किया जाता है, तो वे एक महत्वपूर्ण उपकरण बन जाते हैं। पारंपरिक तरीकों से किए गए उपज आकलन और फसल क्षति आकलन जैसे कार्यों को पूरा करने में एक या दो महीने और बहुत सारी जनशक्ति लगती है। इन तकनीकों का उपयोग करके समान कार्य को न्यूनतम संसाधनों और उच्च सटीकता के साथ आधे या उससे भी कम समय में पूरा किया जा सकता है।

कृषि के लिए जी आई एस की जरूरत किसे है?

जीआईएस का उपयोग शासकीय प्राधिकारियों द्वारा कृषि संबंधित मुद्दों को सुलझाने हेतु तथा कृषि नीतियां बनाने में किया जाता है। व्यक्तिगत किसान भी जीआईएस कि मदद से उपयोगी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कृषि में जी आई एस के उपयोग :

1- कृषि का मानचित्रण और निगरानी

कृषि मानचित्रण का मुख्य उद्देश्य फसल उत्पादकता को पहचानना, उसका मूल्यांकन करना और उपज के आंकड़ों का पूर्वानुमान लगाना है। परंपरागत रूप से, फसल क्षेत्रों की मानचित्रण जनगणना के आंकड़ों के आधार पर किया जाता था, जो बहुत कठिन और समय लेने वाली प्रक्रिया है। रिमोट सेंसिंग (आर एस) और जीआईएस जैसी नवीनतम तकनीकों का उपयोग करके इस कार्य को काफी प्रभावी ढंग से तथा कम समय में किया जा सकता है। फसल के स्वास्थ्य, उसकी वृद्धि और उत्पादन की निगरानी के लिए तापमान, सिंचाई सुविधाएं और मृदा स्वास्थ्य स्थिति जैसे विभिन्नकारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इस उद्देश्य के लिए सरकार ने मृदा स्वास्थ्य कार्ड नामक एक राष्ट्रव्यापी योजना शुरू की है जिसकी मदद से मृदा स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति का आकलन करने के लिए किया जाता है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड विकसित करने के लिए रिमोट सेंसिंग और जीआईएस तकनीक सटीक, समय कुशल और लागत प्रभावी उपकरण है। यवतमाल जिले (महाराष्ट्र) के केलापुर ब्लॉक में एक अध्ययन से पता चला है कि एक मृदा स्वास्थ्य कार्ड विकसित करने की औसत लागत लगभग 190 रुपये है, लेकिन आरएस और जीआईएस का उपयोग करके एक मृदा स्वास्थ्य कार्ड को मात्र 32 रुपये मे विकसित किया जा सकता है।

2- कीट और रोग प्रबंधन

फसल उत्पादन में कमी से खाद्य सुरक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पानी की कमी, खराब मिट्टी, कीट, रोग आदि ऐसे कारक हैं जो कृषि उत्पादकता को प्रभावित करते हैं, इनमें से कीट और रोग का प्रबंधन सबसे महत्वपूर्ण हैं। रोग, फसल उत्पादन और कृषि लाभ के नुकसान का मुख्य कारण बन सकते हैं। पौधों की बीमारी का शीघ्र पता लगाना और इसको फैलने से रोकना, उत्पादन हानि को कम करने में मदद कर सकती है। कीट और रोग प्रबंधन की पारंपरिक विधि (फील्ड स्काउटिंग), अधिक समय लेने वाली और श्रम गहन है। जीआईएस प्लेटफॉर्म में मल्टी-स्पेक्ट्रल, हाइपर स्पेक्ट्रल इमेजिंग जैसी कई तकनीकों की मदद से शुरुआती चरणों में ही कीट और रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3- फसल उपज का पूर्वानुमान

जलवायु अनिश्चितताओं वाले क्षेत्र में फसल से पहले फसल की पैदावार का पूर्वानुमान लगाना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। फसल की उपज जैव भौतिक (फसल, मिट्टी और मौसम की विशेषताओं) और प्रबंधन कारकों पर निर्भर करती है। ये कारक एकक्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में और साल दर साल बदलते रहते हैं। इससे उपज का पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन कार्य हो जाता है। सैटेलाइट आधारित रिमोटसेंसिंग फसल की स्थिति और उपज के पूर्वानुमान के लिए एक उपयुक्त विकल्प प्रदान करता है, क्योंकि यह विभिन्न फसल मापदंडों का समय पर, सटीक और संक्षिप्त अनुमान देता है। वनस्पति सूचकांक (NDVI) का उपयोग करके उपज का मूल्यांकन किया जा सकता है। फसल वृद्धि, स्वास्थ्य और उपज की भविष्यवाणी की निगरानी के लिए संयंत्र विकास सिमुलेशन मॉडल का उपयोग किया जाता है। यह योजनाकार और निर्णय निर्माताओं को रणनीति तैयार करने और यह अनुमान लगाने में सक्षम बनाता है कि कमी के मामले में कितना आयात और अधिशेष के मामले में कितना निर्यात करना है।

4- परिशुद्धता कृषि (precision farming)

परिशुद्धता कृषि के अंतर्गत किसी कृषि क्षेत्र में इनपुट का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने और कृषि उत्पादन को अधिकतम करने के लिए भौगोलिक जानकारी का उपयोग किया जाता है। यह महसूस किया गया है कि अलग अलग क्षेत्र की भूमि अलग-अलग गुणधारण करती है। बड़े खेतों में आमतौर पर मिट्टी, नमी, पोषक तत्वों की उपलब्धता आदि में स्थानिक भिन्नता पाई जाती है। इसलिए रिमोट सेंसिंग और जीआईएस के उपयोग से किसानों को यह निर्धारित करने में मदद मिलती है कि वास्तव में कहां और कितनी मात्रा में इनपुट दिया जाना चाहिए। यह जानकारी किसान को जल, कीटनाशकों, और उर्वरकों जैसे महंगे संसाधनों अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग करने में सहायता करती है।

5- सिंचाई जल प्रबंधन

जनसंख्या वृद्धि और जलवायु परिवर्तन ने उपलब्ध जल संसाधन पर गहरा दबाव डाला है। इस परिप्रेक्ष्य में जल प्रबंधन बहुत आवश्यक हो जाता है। इसमे मिट्टी की जलधारण क्षमता और अंतःस्पंदन दर के साथ मेल करने के लिए पानी के आवेदन की मात्रा, दर और समय को नियंत्रित किया जाता है। रिमोट सेंसिंग और जीआईएस सिंचाई जल प्रबंधन के लिए एक कुशल उपकरण है। यह फसल अवधि के दौरान एक खेत में कई बार छवियों को एकत्र करता है। इन छवियों से फसल में पानी की मांग के विभिन्न संकेतकों जैसे वाष्पोत्सर्जन, मिट्टी की नमी और फसल में पानी के तनाव आदि के बारे में जानकारी मिलती हैं और इसका उपयोग फसल में पानी की आवश्यकता का अनुमान लगाने और सटीक सिंचाई के लिए किया जाता है

6- मौसम विज्ञान

एग्रोमेट्रोलोजी कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए मौसम और जलवायु संबंधी जानकारी का अध्ययन है। यह जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले फसल के नुकसान को कम करने में मदद करता है। मौसम विज्ञान और वनस्पति की जानकारी एग्रोमेट्रोलोजी के दो प्रमुख महत्वपूर्ण इनपुट हैं। रिमोट सेंसिंग और जीआईएस की मदद से कई मौसम मापदंडों जैसे बारिश का गिरना, सतह का तापमान, सौर विकिरण, वाष्पीकरण आदि के सटीक माप प्राप्त किए जा सकते है।

चुनौतियां

1. रिमोट सेंसिंग और जीआईएस जैसी नवीनतम तकनीक का उपयोग करने के लिए तकनीकी ज्ञान और विशेषज्ञता की आवश्यकता हो सकती है।
2. रोग और खरपतवार प्रबंधन जैसे कई कार्यों में बहुत ही सटीक क्षमता वाले डेटा की आवश्यकता होती है। जो की अधिकांशता सार्वजनिक रूप से उपलब्ध नहीं हैं।
3. बादल वाले दिनों में जब ,असंगत धूप कई सैटेलाइटे छवियों को उपयोग के लिए अनुपयुक्त बना सकती है।

वर्मीकम्पोस्ट और मृदा स्वास्थ्य

असित मंडल, ज्योति कुमार ठाकुर, आशा साहू एवं भारत प्रकाश मीणा

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

चुनौतियाँ

दुनिया की बढ़ती आबादी को सुरक्षित भोजन, स्वस्थ मिट्टी और सुरक्षित वातावरण प्रदान करना आने वाले वर्षों में सबसे बड़ी चुनौती होगी। कृषि फसल उत्पादन में कृषि रसायनों के असंतुलित उपयोग को टिकाऊ फसल उत्पादन की हानि, मिट्टी की निम्नीकरण और फसल की गुणवत्ता में गिरावट के प्रमुख कारकों में से एक माना जाता है। हाल ही में, पारंपरिक और रासायनिक खेती के हानिकारक प्रभावों के बारे में बढ़ती जागरूकता के साथ, प्रकृति-आधारित समाधानों के माध्यम से टिकाऊ खाद्य उत्पादन की चिंता बढ़ गई है, जो मिट्टी के स्वास्थ्य को बहाल कर सकते हैं। इसलिए, कंपोस्टिंग तकनीक के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाले जैविक उर्वरक बनाने के लिए उपलब्ध जैविक अवशेषों का पुनर्चक्रण करने के बारे में अधिक लोग जानते हैं। इस दिशा में, वर्मीकम्पोस्टिंग कृषि अपशिष्ट पुनर्चक्रण की महत्वपूर्ण तकनीक है।

वर्मीकम्पोस्ट क्या है?

वर्मीकम्पोस्टिंग केंचुओं के सहयोग से कार्बनिक कूड़े-करकट से बनाई गई खाद है। यह मध्यम तापक्रम की प्रक्रिया है जिसमें केंचुओं का उपयोग किया जाता है, जो 10-32 सेंटीग्रेड पर काम करते हैं। यह खाद बनाने की प्रक्रिया सामान्य खाद बनाने की प्रक्रिया से तेज होती है क्योंकि कार्बनिक पदार्थ केंचुओं की आँतों से गुजरते हैं. इससे केंचुआ खाद में सूक्ष्मजीवाणु और पादप वृद्धि नियंत्रक तत्वों की अधिकता होती है, साथ ही इसमें कीट निवारण गुण भी होते हैं। यह खाद केंचुओं का मल, उनका कोकून और अपचित भोजन से बना है। यह खाद विटामिन्स, प्रोटिनेज, एमाईलेज, लाईपेज, सेल्युलेज और काईटिनेज से भरपूर है। मल कास्ट के रूप में बाहर आने के बाद, मल में उपस्थित एन्जाइम निरंतर कार्बनिक पदार्थों को तोड़ते रहते हैं। वर्मीकास्ट और वर्मीकम्पोस्ट में मानक रासायनिक खाद की तुलना में बहुत अधिक पोषक तत्व हैं, लेकिन परम्परागत खादों से अधिक हैं। केंचुआ पालन में नवाचार के कारण वर्मीवाश जैसे नए उत्पाद भी बनाए जाते हैं। यह उत्पादन किसानों और व्यवसायिक केंचुआ पालकों में लोकप्रिय है। किसान वर्मीवाश बनाकर पत्तियों पर छिड़कते हैं। किसान अक्सर 0.5 लीटर वर्मीवास को 15 लीटर पानी में मिलाकर सब्जियों और फलों के वृक्षों पर छिड़कते हैं, जिससे फलों की पैदावार बढ़ती है।

केंचुओं को भोजन देने के लिए कार्बनिक पदार्थ जैसे नरम पत्तियाँ, अपशिष्ट वनस्पति और अर्धविघटित गोबर का इस्तेमाल किया जा सकता है। ताजा कार्बनिक पदार्थ केंचुओं को हानि पहुंचा सकता है क्योंकि इसके अपघटन के दौरान बनने वाला कार्बनिक अम्ल और अधिक तापमान केंचुओं को मार सकता हैं। गड्ढे के तल, दीवारों और ऊपरी सतह को ढॉकने के लिए जूट से बने फटे पुराने बोरे का उपयोग करना चाहिए, जो केंचुए की वृद्धि और पैदावार के लिए काफी उपयुक्त है।

केंचुआ खाद का पोषक तत्व मान

पशु गोबर, रसोई के कचरे, खेत के अवशेषों और जंगल के कूड़े को खाने से आयतन 40 से 60 प्रतिशत तक कम होता है। एक केंचुआ, जिसका वजन लगभग 0.5-0.6 ग्राम होता है, अपने शरीर के भार का

पचास प्रतिशत खाद में बदल देता है। वर्मीकम्पोस्टिंग में अपशिष्ट पदार्थों का विघटन करने में 90 से 110 दिन लगते हैं, जबकि सामान्य खाद बनने में 6 से 8 महीने लगते हैं। विभिन्न जैविक अपशिष्टों के वर्मीकम्पोस्ट में उच्च पोषक तत्व होते हैं, जो मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

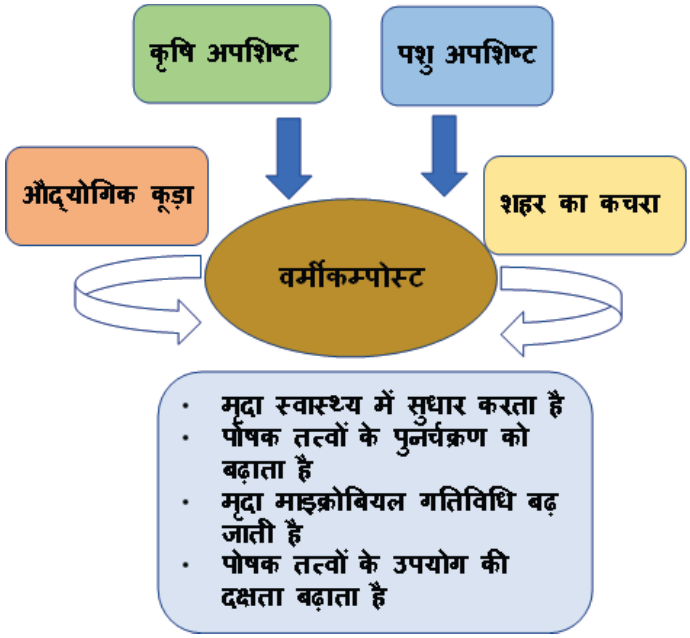

चित्र 1. वर्मीकम्पोस्ट और कृषि में इसकी भूमिका

तालिका-1 में केंचुओं की कास्टिंग के रासायनिक और जैविक गुणों का विश्लेषण किया गया है। इसका पी-एच सामान्य है और इसकी नमी 46.5% है। कंचुआ-खाद में परम्परागत खाद से कहीं अधिक सूक्ष्म पोषक तत्व हैं और कुछ पोषक तत्व लगभग दोगुने होते हैं।

तालिका 1. केंचुआ खाद व साधारण खाद का पोषक तत्व मान

पोषक तत्व	वर्मीकम्पोस्ट	परम्परागत खाद
नमी (%)	46.5	41.5
कुल जैविक कार्बन (%)	21.0	28.0
नाइट्रोजन (%)	1.9	1.4
कार्बन: नाइट्रोजन अनुपात	11.0	20.6
फास्फोरस (P_2O_5) (%)	2.0	1.8
पोटेशियम (K_2O) (%)	0.8	0.7
जिंक (पी.पी.एम)	100	80
कॉपर (पी.पी.एम)	48	40
मैंगनीज (पी.पी.एम)	500	260

प्रमुख केंचुआ की प्रजातियाँ

तीन समूह केंचुओं के बिल बनाने की क्षमता के आधार पर और पारितिक स्तर पर विभाजित किए गए हैं।

1- एपी जेइक केंचुए (Epigeic earthworms): ये केंचुए जमीन पर बिल नहीं बनाते हैं। यह भूमिगत दरारों में प्रवेश करते हैं। यह अधिक नाइट्रोजन युक्त मिट्टी, घास के ढेर या कूड़ा-करकट में अक्सर पाए जाते हैं। अपघटित कार्बन डाइऑक्साइड उनका आधार है। यह पूरे वर्ष सक्रिय रहते हैं जब तक इनके लिए अनुकूल वातावरण रहता है। खाद बनाने वाले केंचुओं की प्रमुख प्रजातियों में सबसे लोकप्रिय हैं पेरियोनिक एक्सकेवेटस (*Perionyx excavatus*), युड्रिला युजिनीया (*Eudrilla euginea*) और इसीना फीटीडा (*Eisenia fetida*)।

चित्र 2.आइसेनिआ फेटिडा	यूड्रीलस यूजेनी	पेरियोनिक्सएक्सकेवेट्स

2. एन्डोजेइक केंचुए (Endogeic earthworms): यह जमीन पर बिल बनाते हैं। यह एक अनुप्रस्थ बिल बनाता है, न कि एक उर्ध्वाकार बिल। वर्षा से आसानी से नष्ट होने वाले यह बिल स्थायी नहीं हैं। इनकी बिल की दीवारों को टूटने से बचाने के लिए उनके शरीर से होने वाले स्त्राव उन्हें चिकना करता है। यह जमीन में 30 सेमी की गहराई तक जाते हैं।

3. ऐनेसिक केंचुए (Anecic earthworms): यह जमीन में मिलते हैं। यह भूमिगत जटिल बिल बनाते हैं। बिल दीवारों को कास्टिंग से मजबूत करते हैं। यह अपने बिल से बाहर निकलकर सतह के कचरे को बिल में डाल देता है। सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा नरम किया गया भोजन केंचुओं द्वारा खाया जाता है। यह एपीजेइक केंचुए की तरह गर्म स्थानों में पाए जाते हैं। इनका जीवन चक्र लंबा है और वे तेजी से नहीं बढ़ते। यह 30 सेमी की गहराई तक जमीन से मिल सकते हैं।

कंचुआ उत्पादन (वर्मीकल्चर)

भारत में आम प्रजातियाँ जैसे इसीना फीटीडा, पेरियोनिक्स एक्सकेवेटस और युड्रिला युजिनीया हैं। जो कार्बनिक अपशिष्टों से खाद बनाने के लिए उपयुक्त पाया गया।

कंचुआ उत्पादन प्रकिया के मुख्य चरण

केंचुआ उत्पादन की प्रक्रिया निम्नलिखित तरीकों से पूरी की जाती है।

गड्ढे का स्थान और उसका निर्माण

- पेड़ों की छाया या जानवरों के रहने के स्थान के निकट (जहां सामान्य तापमान बना रहे) गड्ढा या ढेर बनाना चाहिए।

- आसपास पानी का एक स्त्रोत होना चाहिए।
- गड्ढा या ढेर छाया में जमीन के ऊपर होना चाहिए ताकि वर्षा और अधिक तापमान से सुरक्षित रहे।

गड्ढे का आकार एवं परिधि

- गड्ढे का आकार 10 फीट लंबा, 2 फीट गहरा और 3 फीट चौड़ा होना चाहिए।
- गड्ढे को धूप और गर्मी से बचाने के लिए छाया होना चाहिए।
- केंचुओं की अधिक प्रजनन दर के लिए गड्ढे का माप और विस्तार बहुत महत्वपूर्ण है।
- एक किलो केंचुए 3 से 4 महीने में अपनी संख्या को 2 से 3 गुना कर देता है।

गड्ढे में केंचुआ और कोकून डालना

- केंचुआ और कोकून को ढेर की सतह पर रखें। अब विघटित कार्बनिक पदार्थ पर हाथ से छोटी-छोटी नालियां बनाकर केंचुओं को उसमें डाल देते हैं।
- फिर से नालियों को हाथ से ढक दिया जाता है।
- केंचुओं और कार्बनिक पदार्थों की सतहें इसी क्रम में बिछाई जाती हैं। इससे गड्ढे में एकांतर केंचुओं और कार्बनिक पदार्थों की सतह बनती है।
- 50–60% नमी और 28–32^0 C तापमान होना चाहिए।

गड्ढे में केंचुआ उत्पादन के दौरान ली जाने वाली सावधानियाँ

केंचुआ उत्पादन के दौरान निम्नलिखित सुरक्षा उपायों का पालन किया जाना चाहिए:

- गड्ढों में 50-60% नमी का स्तर बनाए रखना चाहिए।
- 28 से 32 डिग्री सेल्सियस तापमान होना चाहिए।
- भोज्य पदार्थों में अर्धविघटित कार्बन होना चाहिए।
- 15 दिन के अंतराल पर खाद और केंचुआ सम्मिश्रण को हिलाना चाहिए, ताकि वातायन उपयुक्त हो सके।

केंचुआ खाद बनाने की विधियां

जमीन पर दो तरह की वर्मी कम्पोस्टिंग आमतौर पर की जाती है।

1. जमीन में गड्ढे खोदकर केंचुआ खाद बनाना।

• वर्मी कम्पोस्टिंग के लिए गड्ढे का आकार 10 फीट लम्बा, 3 फीट चौड़ा और 2 फीट गहरा होना चाहिए। सभी गड्ढे एक कतार में बनाए जाना चाहिए।

2. जमीन पर ढेर बनाना: केंचुआ खाद बनाने के लिए गड्ढे की जगह जमीन पर ढेर बनाया जा सकता है।

• कार्बनिक अपशिष्ट से ढेर बनाकर केंचुआ खाद बनाया जाता है।

• ढेरों को 10 फीट लंबा, 3 फीट चौड़ा और 2 फीट ऊँचा होना चाहिए। ढेर की लम्बाई को कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा के अनुसार बढ़ाया घटाया जा सकता है। जबकि चौड़ाई तीन फीट और ऊँचाई दो फीट चाहिए।

केंचुआं खाद बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

- वर्मीकम्पोस्टिंग में गेहूँ, सरसों, चना, सोयाबीन और अन्य कृषि अपशिष्ट का प्रयोग किया जाता है।
- स्वच्छ गोबर
- वर्मीकम्पोस्ट फास्फोरस के साथ रॉक फास्फेट बनाना (30–32 प्रतिशत फॉस्फोरस)
- सूखे भार पर अपशिष्ट और गोबर का एक भाग बनाना चाहिए।
- 1 किग्रा प्रति क्विंटल अपशिष्ट पदार्थ में 1000-1200 प्रौढ़ केंचुए मिलाना चाहिए।
- हर गड्ढे में हर सप्ताह 3 से 5 लीटर पानी डालना चाहिए।

ढेर या गड्ढे विधि से पेड़ की छाया में केंचुआ खाद बनाना

पेड़ की छाया के नीचे केंचुआ खाद बनाने के लिए 10 फीट लम्बे, 3 फीट चौड़े और 2 फीट गहरे गड्ढे या ढेर बनाए जाते हैं. गड्ढे जमीन से 1 फीट ऊँचे होने चाहिए, ताकि वर्षा का पानी गड्ढे के अंदर न जाय। ईंटों की दीवार में छह से सात छिद्र बनाए जाते हैं, जिससे हवा का प्रवेश हो सके। नाइलोन स्क्रीन (100 मेस) इन छिद्रों पर लगाया जाता है ताकि केंचुए बाहर नहीं निकल सकें। आधा सड़ा हुआ 3-4 सेमी मोटा गोबर (1 महीने पुराना) गड्ढ़े की तली में बिछा दिया जाता है। इसके बाद, फसल अवशेष और गोबर को एक प्रति एक (भार प्रति भार) अनुपात में लगाकर तह बनाई जाती है। ये दो फीट की परत बनाते हैं। गड्ढे में केंचुओं को डालकर ढंक दिया जाता है। पूरे अपघटन काल में नमी 50–60% रहती है। तापमान और नमी को बनाए रखने के लिए, एक समान तरीके से ऊपर की सतह पर जूट की फटी बोरियों (या जूट की बोरियों) को बिछाया जाता है। कभी-कभी छिड़काव मशीन पानी छिड़कती है। तीन सप्ताह तक कार्बनिक पदार्थ को अपघटन के लिए रखा जाता है, ताकि तापमान स्थिर हो सके और मीसोफिलिक अवस्था मिल सके। तीन हफ्तों में थर्मोफिलिक स्थिति से यह प्रक्रिया बाहर आ जाती है। शुरू में, हर खाद के गड्ढे या ढेर में 10 प्रौढ़ केंचुए प्रति किलो ग्राम अपशिष्ट पदार्थ के हिसाब से डाला जाता है, कुल मिलाकर 1000 केंचुए. फिर पदार्थ को तीन महीने तक विघटन के लिए छोड़ दिया जाता है। यह देखा गया है कि जंगल के अवशेष का अपघटन जल्दी (75-85 दिन) में होता है, जबकि फसल अवशेष का अपघटन करने में 110 से अधिक दिन लगते हैं।

चित्र 3. वर्मीकम्पोस्ट इकाई

फास्फोरस युक्त केंचुआ खाद बनाना

झाबुआ रॉक फास्फेट (जिसमें 30 से 32 प्रतिशत फास्फोरस होता है) को 2.5 प्रति शर्त प्रति क्विंटल के हिसाब से अपशिष्ट पदार्थ में मिलाकर केंचुआ खाद बनाया जाता है। तालिका-2 में केंचुआ खाद और फास्फोरस युक्त केंचुआ खाद की रासायनिक और जैव रासायनिक संरचना दिखाई गई है।

तालिका 2. सोयाबीन भूसा से बनाया गया केंचुआ खाद व फास्फोरस युक्त केंचुआ खाद

मापदंड	वर्मीकम्पोस्ट	फास्फोरस युक्त वर्मीकम्पोस्ट
कुल खनिज (%)	51.0	52.5
कुल कार्बन (%)	27.2	26.5
कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात	14.3	13.6
नाइट्रोजन (%)	1.90	1.95
फास्फेट (%)	2.05	4.0
पोटैशियम (%)	0.80	0.86
जल विलेय कार्बन (%)	0.94	0.88
मैंगनीज (पी.पी.एम.)	500	540
जिंक (पी.पी.एम.)	100	100
ताँबा (पी.पी.एम.)	44	46

स्त्रोत: सिंह और गांगुली (2005)

सिल्पोलिन वर्मी वेड विधि

सिल्पोलिन वर्मी बैड एक नवीनतम केंचुआ खाद उत्पादन प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को पोर्टेबल वर्मी बैड कहा जाता है। कहीं भी उचित जगह पर इसे रखकर केंचुआ खाद बनाया जा सकता है। इसका आकार चार फीट चौड़ा, दो फीट ऊंचा और दस से बारह फीट लम्बा होता है। इसमें उचित पानी निकास और वायु संचार का प्रबन्ध है। इस प्रक्रिया से अच्छी खाद बनाई जा सकती है, ढेर या गड्ढे प्रक्रिया की तरह। साथ-साथ बहुत कम समय लगता है। यह तरीका अधिक सरल है। जो कहीं पर रखकर केंचुआ खाद बनाया जा सकता है।

चित्र 4. सिल्पोलिन वर्मी-वेड

वर्मीवाश

1 किग्रा. प्रौढ़ केंचुए (1000-1200 केंचुए) में वर्मीकम्पोस्ट नहीं होना चाहिए, एक टब में डालकर 500 मिली (37–40 डिग्री सेल्सियस) गुनगुना पानी डालकर 2 मिनिट के लिए हिलाया जाना चाहिए। केंचुओं को निकालकर 500 मिली. पानी से धोकर कमरे के तापमान पर टब में डाल दें। हिलाने से केंचुए शरीर से पर्याप्त म्यूकस (चिपचिपा) व तरल पदार्थ निकालते हैं। गुनगुने पानी से सामान्य पानी में वापस डालने से केंचुओं के शरीर पर म्यूकस (चिपचिपा पदार्थ) को भी अलग कर सकते हैं. यह भी केंचुओं को पुनर्जीवित करने में मदद करता है। तालिका-3 में वर्मीवाश और वर्मीकास्ट युक्त केंचुआ खाद के रासायनिक गुणों और पोषक तत्वों का विवरण दिया गया है।

तालिका 3. वर्मीकास्ट व वर्मीवाश के रासायनिक गुण एवं पोषक तत्वों का स्तर

मापदंड	वर्मीवाश	वर्मीकास्ट
पी-एच	7.52	7.35
ईसी (डी एस/एम.)	1.10	0.53
जैविक कार्बन (%)	0.009	0.38
कुल नत्रजन (%)	0.006	0.60
कुल फास्फोरस (%)	0.004	0.31
कुल पोटाश (%)	0.005	0.06
कापर (पी.पी.एम.)	नगण्य	29
मैग्नीज (पी.पी.एम.)	25	315
जिंक (पी.पी.एम.)	नगण्य	34

स्त्रोत: सिंह और गांगुली (2003)

वर्मीकम्पोस्ट के फायदे

- कृषि अपशिष्ट, पशुमल, वन लिट्टर और कृषि आधारित औद्योगिक अपशिष्ट, जो केंचुआ खाद बनाने में प्रयोग किए जा सकते हैं।
- वर्मीकम्पोस्ट पौधों के पोषक तत्वों का एक संग्रहालय है।
- मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को बढ़ाकर फसलों की उत्पादकता को बढ़ाती है (तालिका 4)।
- केंचुए लाभदायक सूक्ष्म जीवों को बढ़ावा देते हैं, जमीन के घातक पैथोजन को नष्ट करते हैं और कार्बनिक अपषिष्ट पदार्थों को विटामिन, एन्जाइम और जीव प्रतिरक्षा में बदलते हैं। मृदा स्वास्थय को सुधारने में प्राकृतिक खाद्य श्रृंखला में केंचुओं का योगदान महत्वपूर्ण है।
- यह 1.5 से 3 महीने के भीतर वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए पशु अवशेषों, फसल और जैविक कचरे का प्रभावी रूपांतरण करता है।
- यह जैविक खाद्य उत्पादन के लिए आर्थिक रूप से उपयुक्त पूरक है और पर्यावरण के लिए सुरक्षित है।
- यह सरल और कम लागत वाली तकनीक है

तालिका4. मिट्टी के गुणों को प्रभावित करने वाले वर्मीकम्पोस्ट की भूमिका

मिट्टी के गुण	विभिन्न लाभ
भौतिक	मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ाना मृदा संरचना और एकत्रीकरण को बेहतर बनाता है पोरसिटी और जल प्रवेश की क्षमता मृदा ऑक्सीजन की उपलब्धता को बढ़ाती है मिट्टी का तापमान संरक्षित करता है
रासायनिक	मृदा जैविक कार्बन बढ़ाता है पौधों को पोषक तत्व देता है कटियन विनिमय क्षमता बढ़ाता है और आधार संतृप्ति बढ़ाता है
जैविक	मिट्टी में माइक्रोबियल बायोमास और एंजाइमों की गतिविधि में वृद्धि बेहतर मिट्टी माइक्रोबियल समुदायों की स्थापना सूक्ष्मजीवों की वृद्धि, पौधों के रोग जनकों की कमी और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों की वृद्धि

अर्थशास्त्र/प्रौद्योगिकी की लागत

10 बेड (10 x 3 x 2 फीट) से लगभग 3-4 टन वर्मीकम्पोस्ट बनाया जा सकता है। प्रति किलो केंचुए की कीमत चार सौ रुपये है। 50 किलोग्राम का वर्मीकम्पोस्ट बैग 150 रुपये (3000 रुपये प्रति टन) में मिल सकता है। वर्मीकम्पोस्ट आम तौर पर किसी भी अन्य खाद की तरह प्रयोग किया जाता है। फसल प्रणाली में 5 टन प्रति हेक्टेयर और वृक्षारोपण में 1-10 किग्रा/पेड़ की दर से वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग, पेड़ों के आकार के आधार पर। एक वर्ष के भीतर किसान अधिक जैविक खाद या वर्मीकोपोस्ट बना सकते हैं।

किसान खाद को *ट्राइकोडर्मा*, *स्यूडोमोनास*, *राइजोबियम*, *एज़ोस्पिरिलम* और नीम केक जैसे प्राकृतिक रूप से उपलब्ध अन्य सामग्री से भरना शुरू कर सकते हैं, जो जैविक खेती के लिए अनुशंसित हैं। गुणवत्तापूर्ण वर्मीकम्पोस्ट बनाने और बेचने के इच्छुक किसानों को इसे एक दीर्घकालिक निवेश समझना चाहिए। थोक में जैविक खाद या वर्मीकम्पोस्ट बेचने के लिए कम कीमत पर कुछ महीनों का समय लगेगा। किसान खाद बेचकर अधिक पैसा कमा सकते हैं और जैविक खाद, वर्मीकम्पोस्ट और कृषि उत्पादन में अधिक नौकरियां बना सकते हैं।

सोयाबीन की प्राकृतिक खेती

जे. के. ठाकुर[1], भारत प्रकाश मीणा[1], एन. रविशंकर[2], निशांत सिन्हा[1], प्रमोद झा[1], आर. इलानचेलियन[1], अबिनाश दास[1], असित मंडल[1] एवं नीलेश रघुवंशी[1]

[1]भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल
[2]भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम

सोयाबीन भारत में खाद्य तेल की एक प्रमुख फसल है जो मुख्यतः मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तेलंगाना एवं गुजरात में उगाई जाती है। खरीफ दलहनी फसल होने के कारण सोयाबीन में कीट एवं बीमारियों का भी प्रकोप अत्यधिक होता है जिससे इसकी उत्पादकता पर काफी असर पड़ता है। खरपतवार की रोकथाम एवं कीटों के नियंत्रण के लिए किसानों को कृषि रसायनों का बार बार उपयोग करना पड़ता है जिससे लागत बढ़ने के साथ साथ उत्पाद गुणवत्ता भी प्रभावित होती है। विकल्प के रूप में जैविक या प्राकृतिक विधि से सोयाबीन की खेती कर किसान न सिर्फ लागत कम कर सकता है बल्कि उत्पाद भी रसायन रहित होंगे एवं मृदा स्वास्थ्य भी अच्छी होगी। जैविक खेती में किसान जैविक खादों, कम्पोस्ट एवं जैव उर्वरकों का उपयोग कर सकता है, प्राकृतिक खेती में प्रक्षेत्र पर ही बनाये गए बीजामृत, जीवामृत तथा घनजीवामृत का उपयोग कर फसल उत्पादन करने की अनिवार्यता होती है। 'प्राकृतिक खेती' प्रकृति में संतुलन और संसाधनों में टिकाऊपन के लिए कृषि-पारिस्थितिकी पर आधारित एक कृषि प्रणाली है, जो फसलों, पेड़ों और पशुधन को एकीकृत करती है और बिना किसी रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग के जीवामृत, बीजामृत, घनजीवामृत, नीमास्त्र इत्यादि के साथ-साथ अंतरवर्ती, वाफसा और आच्छादन का उपयोग, कर मृदा के जैव विविधता को बनाये रखती है। यह पारंपरिक और आधुनिक कृषि पद्धतियों दोनों का उपयोग करता है, जिसका उद्देश्य पर्यावरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य और समुदायों की रक्षा करना है। जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सक्षम होने के कारण सोयाबीन को कम नाइट्रोजन उर्वरक की जरूरत होती है इसलिए यह फसल जैविक एवं प्राकृतिक खेती के लिए उपयुक्त है। मध्य प्रदेश में प्राकृतिक विधि द्वारा सोयाबीन की खेती करने के लिए नीचे दिए गए तथ्यों एवं क्रियाओं का अनुसरण करना चाहिए।

भूमि का चुनाव एवं तैयारी: रेतीली दोमट या दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास का उचित प्रबंध हो, सोयाबीन के लिये उपयुक्त पाई गई है। मिट्टी का पी एच मान 6 से 6.5 होना चाहिए, ताकि नत्रजन स्थिरीकारक बैक्टीरिया अपना काम सुचारू रूप से कर सकें । वर्षा प्रारम्भ होने पर 2 या 3 बार बखर तथा पाटा चलाकर खेत को तैयार कर लेना चाहिये। ढेला रहित और भुरभुरी मिट्टी वाले खेत सोयाबीन के लिये उत्तम होते हैं।

प्रजातियों का चयन: जैविक खेती के लिए उपयुक्त सोयाबीन की मूल्यांकित प्रजातियों को जिसमें RVS-2002-4, JS-20-41 तथा JS-97-52 की उपज अन्य प्रजातियों से बेहतर पायी गई, इन प्रजातियों का प्रयोग प्राकृतिक खेती की लिए किया जा सकता है।

अंतरवर्ती फसल एवं फसल विविधता का प्रबंधन: सोयाबीन में अन्तवर्ती एवं मिश्रित फसल के रूप में अरहर, मक्का, ज्वार एवं कपास को आसानी से उगा सकते हैं। सोयाबीन के साथ मक्का को अंतर्वर्ती फसल के रूप में 4:2 कतारों में उगाया जा सकता हैं।

अन्तवर्ती फसल हेतु फसलों का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए कि फसलें उस क्षेत्र की जलवायु, भूमि व सिंचाई आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त हो एवं प्रकाश, नमी व स्थान के लिए अधिक प्रतिस्पर्धा ना हो । दलहनी फसलों के साथ अनाज वाली फसलों को, सीधी बढ़ने वाली मुख्य फसलों के साथ भूमि पर फैलने वाली फसलें बोई जानी चाहिए। फैलने वाली फसलें मिट्टी कटाव रोकने के साथ-साथ वाष्पीकरण द्वारा होने वाली जल हानि को भी रोकने में सहायक है। एक ही प्रकार के कीट व रोगों की शरण देने वाली फसलों का चयन मिश्रित फसल के लिए नहीं करना चाहिए जैसे मक्का, बाजरा, ज्वार का तना छेदक तीनों फसलों को हानि पहुंचाता है. इस तरह का फसल मिश्रण ना करें। गहरी जड़ वाली फसलों के साथ उथली जड़ वाली फसलें बोई जानी चाहिए। इससे दोनों फसलें पोषक तत्व एवं नमी का अवशोषण जमीन की अलग-अलग गहराई से कर सकेंगी।

बीज उपचार: सोयाबीन फसल के बीजों को बोने से पहले बीजों को बीजामृत से उपचारित करके बुआई करनी चाहिए। बीजों को बीजामृत से उपचारित करके कुछ देर सूखने के लिए छाया में छोड़ दें। बीजों पर लगे बीजामृत सूखने के बाद बीजों की बुआई करना चाहिए। बीजामृत बनाने के लिए देशी गाय का गोबर (5 किग्रा), गौमूत्र (5 ली), कैल्शियम क्लोराइड (50 ग्राम), मिट्टी (150 ग्राम) एवं पानी (20 ली), की आवश्यकता होती है। 5 किग्रा सोयाबीन के बीजो को उपचारित करने के लिए 1 लीटर बीजामृत की जरूरत पड़ती हैं।

बुआई : सोयाबीन की बीज दर 75-80 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर रखी जाती है। बुआई के लिए सीड ड्रिल का उपयोग करते हैं जिसमें कतार से कतार की दूरी 30-45 सें.मी. एवं पौधों से पौधों की दूरी 4 से 5 सें.मी. रखी जाती है। ध्यान देने वाली बात यह है कि बुआई करते समय बीज की गहराई 4 सें.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। अंतर्वर्ती फसलों को सोयाबीन के साथ बुआई करने के लिए सोयाबीन की बुआई करते समय सीडड्रिल के बीच के छेद को बंद कर देना चाहिए जिससे बाद में खाली लाइनों में अंतर्वर्ती फसलों को बोया जा सके इसके अलावा हर संभव प्रयास करना चाहिए कि सोयाबीन की बुआई 15 जून से 30 जून की अवधि में समाप्त कर दी जाए। इस अविधि में बुवाई से अधिकतम उपज प्राप्त होती है। यदि मानसून देरी से आए तो शीघ्र पकने वाली प्रजातियों का प्रयोग करना चाहिए।

पोषक तत्व प्रबंधन : मृदा में पोषक तत्व प्रबधन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि फसल की मांग एवं आवश्यकता के अनुसार पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध हो सके, जिससे अधिक से अधिक उपज मिल सके और मृदा स्वस्थ्य सुरक्षित बनी रहे। ग्रीष्मकाल में मानसूनपूर्व ग्रीन मैन्योर फसल जैसे ढैंचा, सनई, मूंग, तिल इत्यादि की बुवाई कर 30-40 दिनों बाद खेत में मिला देना चाहिए जिससे कार्बन एवं नाइट्रोजन की उपलब्धता आगामी फसल को हो सके । प्राकृतिक खेती में यथास्थान उपलब्ध संसाधनों (देशी गाय का गोबर, गौमूत्र, बेसन एवं गुड़) से बनाये जाने वाले उत्पाद जैसे जीवामृत एवं घनजीवामृत इत्यादि के द्वारा पोषक तत्व प्रबंधन किया जाता हैं। जीवामृत मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता को बढ़ाने और प्राकृतिक वातावरण बनाये रखने के लिए उपयोग किया जाता है, यह लाभकारी जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि के साथ पोषक तत्वों की भी पूर्ति करता है। जीवामृत को सोयाबीन में 15 दिन के अंतराल पर 600 लीटर प्रति एकड़ की दर से सोयाबीन की फलियों में दाने के सख्त होने की अवस्था तक डालना चाहिए। घन जीवामृत सोयाबीन में बेसल खुराक के रूप में प्रति एकड़ भूमि में 400 किलोग्राम उपयोग करने की सिफारिश की जाती है। सप्तधान्यंकुर अर्क मूलतः अनाज की चमक और वजन बढ़ाने के लिए की जाती है।

खरपतवार प्रबंधन: सोयाबीन की बुआई के 20-25 दिन बाद एक निंढ़ाई करना चाहिए जिससे खरपतवार मुख्य फसल के साथ प्रतिस्पर्धा न कर सकें। सोयाबीन में खरपतवार प्रबंधन के लिए फसल अवशेष का उपयोग किया जा सकता हैं। पिछले सीजन में उगाई गई फसलों के अबशेष को सोयाबीन की कतारों के बीच में मल्च के रूप में 6 टन प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग कर सकते हैं।

कीट प्रबंधन: प्राकृतिक खेती में फसलों को कीटों एवं रोगों से बचने के लिए विभिन्न वनस्पतियों की पत्तियों के काढ़े जैसे नीमास्त्र, अग्निअस्त्र, दशपर्णी अर्क, सोंठास्त्र को 200 लीटर पानी में मिलाकर 1 एकड़ में छिड़काव कर सकते है। ट्रैप फसलों को मेड़ पर उगाकर परजीवी खरपतवार या कीट-पतंग से होने वाले नुकशान को कम किया जा सकता हैं। सोयाबीन के चारों और भिंडी, ग्रीन बीन एवं ढैंचा को लगाकर बीन बीटल एवं सीड लिंग मेगट स्टिंगबग नियंत्रित किया जा सकता हैं।

प्राकृतिक खेती करने के फायदे

- प्राकृतिक खेती करने से किसानों को किसी भी प्रकार के रसायन और कीटनाशक को खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इस प्रकार की खेती में किसान रासायनिक खादों और कीटनाशकों के स्थान पर अपने घर पर बनाई गई चीजों का प्रयोग करते हैं।
- प्राकृतिक खेती करने के दौरान लागत कम आती है।
- प्राकृतिक खेती से मिट्टी में उपस्थित जैवविविधता का विकास होता है।
- पौधों को पानी की कम जरूरत होती है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति के साथ-साथ मृदा के भौतिक रसायनिक एवं जैविक गुणवत्ता भी बढ़ जाती है।
- वातावरण के सभी कारकों एवं जीवों के साथ तालमेल बना कर पारिथिति तंत्र को व्यवस्थित रखता है।

आधुनिक कृषि में बायोस्टिमुलेंट्स की क्षमता का अनावरण: एक क्रांति

आशा साहू, भारती के, राकेश परमार, सुदेशना भट्टाचार्य, निशा साहू, ज्योति कुमार ठाकुर, ज्योति समोता एवं एस आर मोहंती

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)

कृषि के लगातार विकसित हो रहे परिदृश्य में, ध्यान तेजी से टिकाऊ और कुशल प्रथाओं की ओर बढ़ रहा है। इस प्रतिमान बदलाव के बीच, बायोस्टिमुलेंट्स कृषि आदानों के एक शक्तिशाली वर्ग के रूप में उभरे हैं, जो पौधों की वृद्धि एवं विकास को बढ़ाने के लिए एक अनूठा दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। उर्वरकों के विपरीत जो मुख्य रूप से पोषक तत्व प्रदान करते हैं या कीटनाशक जो कीटों को नियंत्रित करते हैं, बायोस्टिमुलेंट्स पौधे के भीतर प्राकृतिक शारीरिक प्रक्रियाओं को उत्तेजित करके काम करते हैं। यह विस्तृत अन्वेषण बायोस्टिमुलेंट्स की आकर्षक दुनिया में उतरता है, उनके विविध प्रकारों, क्रिया के जटिल तंत्रों और आधुनिक कृषि को प्रदान किए जाने वाले असंख्य लाभों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

बायोस्टिमुलेंट्स के क्षेत्र को परिभाषित करना:

मूल रूप से, बायोस्टिमुलेंट को एक पदार्थ या सूक्ष्मजीव के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसे जब पौधों, बीजों या जड़ क्षेत्र पर लगाया जाता है, तो पोषक तत्वों के अवशोषण, पोषक तत्वों की दक्षता, अजैविक तनाव के प्रति सहिष्णुता और फसल की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं को उत्तेजित करता है, जो इसकी पोषक तत्व सामग्री से स्वतंत्र है। इस व्यापक परिभाषा में सामग्रियों की एक विशाल श्रृंखला शामिल है, प्रत्येक क्रिया और लाभ के अपने अनूठे तरीके के साथ। पारंपरिक उर्वरकों और से बायोस्टिमुलेंट्स को अलग करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनका प्राथमिक कार्य प्रत्यक्ष पोषण या कीट नियंत्रण नहीं है, बल्कि पौधे के फिजियोलॉजी का मॉड्यूलेशन है।

एक विविध स्पेक्ट्रम: बायोस्टिमुलेंट्स के विभिन्न प्रकारों की खोज:

बायोस्टिमुलेंट्स की दुनिया की अपनी विविधता इसकी विशेषता है। बायोस्टिमुलेंट्स की उत्पत्ति और प्राथमिक घटकों के आधार पर विभिन्न श्रेणियां हैं। इन विभिन्न प्रकारों को समझना उनके विशिष्ट भूमिकाओं और अनुप्रयोगों की सराहना करने के लिए महत्वपूर्ण है:

- **ह्यूमिक और फल्विक एसिड:** ये मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन से प्राप्त जटिल कार्बनिक अणु हैं। वे मिट्टी की संरचना में सुधार, पोषक तत्वों की उपलब्धता (विशेष रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों) को बढ़ाने और जड़ के विकास को उत्तेजित करने की क्षमता के लिए जाने जाते हैं। ह्यूमिक एसिड पोषक तत्वों को चिलेट कर सकते हैं, जिससे वे पौधों के लिए अधिक सुलभ हो जाते हैं, जबकि फल्विक एसिड पौधे की कोशिकाओं में प्रवेश कर सकते हैं और पौधे के भीतर पोषक तत्वों के परिवहन को सुविधाजनक बना सकते हैं।

- **समुद्री शैवाल के अर्क:** विभिन्न प्रजातियों के समुद्री शैवाल से प्राप्त, समुद्री शैवाल के अर्क फाइटोहोर्मोन (जैसे ऑक्सिन, साइटोकिनिन और जिबरेलिन), सूक्ष्म पोषक तत्वों, अमीनो एसिड और पॉलीसेकेराइड से भरपूर होते हैं। ये यौगिक कोशिका विभाजन और बढ़ाव को बढ़ावा दे सकते हैं, प्रकाश संश्लेषण को बढ़ा सकते हैं, तनाव सहिष्णुता (विशेष रूप से सूखा और लवणता के प्रति) में सुधार कर सकते हैं और समग्र पौधे के स्वास्थ्य को बढ़ावा दे सकते हैं।
- **अमीनो एसिड और प्रोटीन हाइड्रोलाइज़ेट्स:** ये प्रोटीन के टूटने से प्राप्त होते हैं और इनमें मुक्त अमीनो एसिड और पेप्टाइड्स होते हैं। वे पौधे के प्रोटीन के लिए बिल्डिंग ब्लॉक्स के रूप में कार्य कर सकते हैं, पोषक तत्वों के अवशोषण और आत्मसात को उत्तेजित कर सकते हैं, तनाव सहिष्णुता बढ़ा सकते हैं और फल लगने और गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं। प्रोटीन हाइड्रोलाइज़ेट्स सिग्नलिंग अणुओं के रूप में भी कार्य कर सकते हैं, जो पौधों में लाभकारी शारीरिक प्रतिक्रियाओं को ट्रिगर करते हैं।
- **माइक्रोबियल इनोकुलेंट्स:** इस श्रेणी में लाभकारी सूक्ष्मजीव शामिल हैं जैसे कि प्लांट ग्रोथ-प्रमोटिंग राइज़ोबैक्टीरिया (पीजीपीआर), माइकोरिज़ल कवक और ट्राइकोडर्मा।
  - **पीजीपीआर:** ये बैक्टीरिया पौधे की जड़ों को उपनिवेशित करते हैं और वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर सकते हैं, फास्फोरस को घुलनशील बना सकते हैं, फाइटोहोर्मोन का उत्पादन कर सकते हैं और रोगजनकों के खिलाफ पौधे की रक्षा को बढ़ा सकते हैं।
  - **माइकोरिज़ल कवक:** ये पौधे की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाते हैं, पोषक तत्वों और पानी के अवशोषण के लिए जड़ की सतह क्षेत्र को काफी बढ़ाते हैं, विशेष रूप से फास्फोरस। वे तनाव सहिष्णुता में भी सुधार करते हैं और पौधे के रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा सकते हैं।
  - **ट्राइकोडर्मा:** ये कवक पोषक तत्वों के अवशोषण में सुधार कर सकते हैं, रोगजनकों के खिलाफ प्रणालीगत प्रतिरोध को प्रेरित कर सकते हैं और जड़ के विकास को बढ़ावा दे सकते हैं।
- **चिटोसन और अन्य बायोपोलीमर:** क्रस्टेशियंस के एक्सोस्केलेटन में पाए जाने वाले काइटिन से प्राप्त चिटोसन, और पौधे से प्राप्त पॉलीसेकेराइड जैसे अन्य बायोपोलीमर, पौधे की रक्षा प्रतिक्रियाओं को उत्पन्न कर सकते हैं, पोषक तत्वों के अवशोषण में सुधार कर सकते हैं और तनाव सहिष्णुता बढ़ा सकते हैं। चिटोसन ने कुछ फंगल रोगों की घटनाओं को कम करने में भी क्षमता दिखाई है।
- **सिलिकॉन:** इसे पूर्ण रूप से बायोस्टिमुलेंट के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जाता है, घुलनशील सिलिकॉन पौधे के स्वास्थ्य के लिए काफी फायदेमंद हो सकता है। यह कोशिका भित्तियों को मजबूत करता है, जिससे पौधे कीटों और बीमारियों के प्रति अधिक प्रतिरोधी बनते हैं, और सूखा और लवणता जैसे अजैविक तनावों के प्रति सहिष्णुता में सुधार होता है।

- **पौधे के अर्क (समुद्री शैवाल को छोड़कर):** विभिन्न पौधों के अर्क में बायोएक्टिव यौगिक हो सकते हैं जो बायोस्टिमुलेंट के रूप में कार्य करते हैं। इन अर्क में फाइटोहोर्मोन, एंटीऑक्सिडेंट या अन्य सिग्नलिंग अणु हो सकते हैं जो विकास और तनाव प्रतिरोध को बढ़ावा देते हैं।
- **अकार्बनिक बायोस्टिमुलेंट्स:** कुछ अकार्बनिक यौगिक, पारंपरिक उर्वरकों को छोड़कर, बायोस्टिमुलेंट्स के रूप में कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, सेलेनियम या मोलिब्डेनम के विशिष्ट रूप, कम मात्रा में, पौधे की वृद्धि और तनाव सहिष्णुता को बढ़ा सकते हैं।

पौधे की क्षमता को अनलॉक करना: बायोस्टिमुलेंट्स के बहुआयामी लाभ:

कृषि में बायोस्टिमुलेंट्स को अपनाने से व्यापक लाभ मिलते हैं, जो बढ़ी हुई उत्पादकता, स्थिरता और फसल की गुणवत्ता में योगदान करते हैं:

- **बढ़ा हुआ पोषक तत्व अवशोषण और उपयोग:** बायोस्टिमुलेंट्स जड़ की संरचना में सुधार कर सकते हैं, पोषक तत्व ट्रांसपोर्टरों की गतिविधि बढ़ा सकते हैं और मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ा सकते हैं। इससे मैक्रो और सूक्ष्म पोषक तत्वों दोनों का अधिक कुशलतापूर्वक अवशोषण होता है, जिससे कृत्रिम उर्वरकों की उच्च खुराक की आवश्यकता कम हो सकती है।
- **अजैविक तनावों के प्रति बेहतर सहिष्णुता:** बढ़ते जलवायु परिवर्तन के युग में, बायोस्टिमुलेंट्स की सूखा, लवणता, गर्मी, ठंड और भारी धातु विषाक्तता जैसे तनावों के प्रति पौधे के लचीलेपन को बढ़ाने की क्षमता अमूल्य है। वे ऑस्मोप्रोटेक्टेंट्स के संचय, एंटीऑक्सिडेंट एंजाइमों की सक्रियता और तनाव से संबंधित जीन अभिव्यक्ति के मॉड्यूलेशन जैसी शारीरिक प्रतिक्रियाओं को ट्रिगर करके इसे प्राप्त करते हैं।
- **बढ़ा हुआ विकास:** बायोस्टिमुलेंट्स पौधे के विकास के विभिन्न पहलुओं को बढ़ावा दे सकते हैं, जिसमें बीज अंकुरण, जड़ विकास, प्ररोह वृद्धि, फूल और फल लगना शामिल है। यह अक्सर फाइटोहोर्मोन की उपस्थिति या हार्मोन उत्पादन की उत्तेजना का कारण होता है।
- **बेहतर फसल गुणवत्ता:** बायोस्टिमुलेंट्स का काटी गई उपज की गुणवत्ता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, जिससे फल के आकार, चीनी सामग्री, रंग, स्वाद, शेल्फ लाइफ और पोषण मूल्य (जैसे, विटामिन और एंटीऑक्सिडेंट में वृद्धि) जैसे मापदंडों में सुधार होता है।
- **बढ़ा हुआ प्रकाश संश्लेषण:** कुछ बायोस्टिमुलेंट्स प्रकाश संश्लेषक गतिविधि को उत्तेजित कर सकते हैं, जिससे कार्बन आत्मसात और बायोमास उत्पादन में वृद्धि होती है।
- **मिट्टी मे लाभकारी सुक्ष्मजीवों की गतिविधि बढ़ाना:** कुछ बायोस्टिमुलेंट्स, विशेष रूप से ह्यूमिक पदार्थ और माइक्रोबियल इनोकुलेंट्स, मिट्टी में लाभकारी सूक्ष्मजीवों की वृद्धि और गतिविधि को बढ़ावा दे सकते हैं, जिससे मिट्टी के स्वास्थ्य और पोषक तत्वों के चक्रण में सुधार होता है।
- **कृत्रिम आदानों पर कम निर्भरता की संभावना:** पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता और तनाव सहिष्णुता को बढ़ाकर, बायोस्टिमुलेंट्स सिंथेटिक उर्वरकों और कीटनाशकों की आवश्यकता को कम करने में योगदान कर सकते हैं, जो टिकाऊ कृषि के सिद्धांतों के अनुरूप है और पर्यावरणीय प्रभाव को कम करता है।
- **बढ़ी हुई पौधे की रक्षा तंत्र:** कुछ बायोस्टिमुलेंट्स पौधों में प्रणालीगत अधिग्रहित प्रतिरोध (एसएआर) या प्रेरित प्रणालीगत प्रतिरोध (आईएसआर) को ट्रिगर कर सकते हैं, जिससे वे रोगजनकों और कीटों के हमलों के प्रति अधिक प्रतिरोधी बन जाते हैं।

चुनौतियों और भविष्य की दिशाओं को खोजना:

असंख्य लाभों के बावजूद, बायोस्टिमुलेंट्स का क्षेत्र अपनी चुनौतियों से मुक्त नहीं है। क्रिया के उनके तरीकों की जटिलता, उत्पाद की गुणवत्ता में परिवर्तनशीलता और मानकीकृत परीक्षण पद्धतियों की आवश्यकता ऐसे क्षेत्र हैं जिनके लिए चल रहे अनुसंधान और विकास की आवश्यकता है। इसके अलावा, विभिन्न फसलों और पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए बायोस्टिमुलेंट्स की इष्टतम अनुप्रयोग दरों, समय और संयोजनों को समझना उनके लाभों को अधिकतम करने के लिए महत्वपूर्ण है।

आगे देखते हुए, कृषि में बायोस्टिमुलेंट्स का भविष्य उज्जवल है। क्रिया के उनके तंत्रों में निरंतर अनुसंधान, अधिक सटीक अनुप्रयोग प्रौद्योगिकियों का विकास और मजबूत नियामक ढांचे की स्थापना टिकाऊ फसल उत्पादन में उनकी भूमिका को और मजबूत करेगी। जैसे-जैसे पर्यावरणीय रूप से अनुकूल और संसाधन-कुशल खेती प्रथाओं पर वैश्विक ध्यान केंद्रित हो रहा है, बायोस्टिमुलेंट्स एकीकृत फसल प्रबंधन प्रणालियों का एक तेजी से अभिन्न अंग बनने के लिए तैयार हैं, जो एक अधिक टिकाऊ और उत्पादक कृषि भविष्य में योगदान करते हैं।

निष्कर्ष : बायोस्टिमुलेंट्स कृषि प्रौद्योगिकी में एक महत्वपूर्ण प्रगति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो पौधे के प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए एक परिष्कृत और टिकाऊ दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। उनकी विविध प्रकृति, कार्बनिक अर्क से लेकर लाभकारी सूक्ष्मजीवों तक, विशिष्ट पौधे की जरूरतों और पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के लिए लक्षित अनुप्रयोगों की अनुमति देती है। पौधों के भीतर निहित क्षमता को अनलॉक करके, बायोस्टिमुलेंट्स न केवल फसल की पैदावार और गुणवत्ता में सुधार कर रहे हैं; वे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अधिक लाभकारी और पर्यावरण की दृष्टि से जिम्मेदार कृषि प्रणाली को बढ़ावा दे रहे हैं।

होमा जैविक खेती

शिनोजी के सी[1], आशिष मुराइर्[2], संजय श्रीवास्तव[1], रश्मि आइर्[3], रेनू बालकृष्णन[4], प्रिया गुरव[5], भारत प्रकाश मीणा[1], दिनेश कुमार यादव[1], अभय ओमप्रकाश शिराले[6]

[1]भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल, मध्य प्रदेश
[2]भाकृअनुप- कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग अनुसंधान संस्थान, लुधियाना, पंजाब
[3]भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केन्द्र, कोटा, राजस्थान
[4]भाकृअनुप-केन्द्रीय कटाई-उपरांत अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान
[5]भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद, तेलंगाना
[6]भाकृअनुप-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर, महाराष्ट्र

सार

होमा जैविक कृषि एक सम्पूर्ण प्रदर्शित विज्ञान है। यह भारत एवं अन्य देशों में एक लोकप्रिय खेती का तरीका बनता जा रहा है। होमा जैविक कृषि में मुख्य रूप से अग्निहोत्र एवं अग्निहोत्र मे उत्पादित होने वाले राख के उपर ध्यान केंद्रित किया गया है। होमा जैविक खेती फसल में कीट एवं रोग संक्रमण को नियंत्रण करने में लाभदायक मानी जाती है। अग्निहोत्र से निकलने वाले धुएं में इथीलीन ऑक्साइड और फार्मेल्डीहाइड वायु का निर्माण होता है जो वायुमंडल में उपस्थित हानिकारक सूक्षजीवों को नष्ट करता है। इस लेख में अग्निहोत्र में निर्मित होने वाले राख एवं धुएं के फायदों के बारे में विवरण किया गया है।

प्रस्तावना

भारत में कृषि एक युगों-पुरानी प्रथा है। वैदिक साहित्य जैसे की ऋग्वेद के श्लोकों में विभिन्न फसलों, जुताई, खाद, सिंचाई, भूमि की परती, कृषि त्यौहारों और कृषि देवताओं की पूजा आदि के बारे में लिखा हुआ है। प्राचीन काल में भारत में खेती पूर्ण रूप से जैविक थी। 1960 के बाद देश में कृषि क्षेत्र में "हरित क्रांति" के साथ नया दौर आया और जैविक खेती रासायनिक खेती में बदल गई। हरित क्रांति के समय से बढती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टी से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक था। अधिकांश किसानों ने अनजाने में इन नई तकनीकों को अवैज्ञानिक तरीके से अपनाया और इससे प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिक संतुलन में गिरावट आ गई। इस परिदृश्य ने कुछ पर्यावरणविदों को "प्रकृति की ओर वापस" और "पर्यावरण के अनुकूल कृषि" जैसी अवधारणाओं के लिए अभियान चलाने के लिए प्रेरित किया। होमा जैविक खेती "प्रकृति में वापस" कृषि मॉडल का एक उदाहरण है, जिसे पर्यावरण आंदोलन के एक भाग के रूप में विकसित किया गया है, जिसमें जैविक कृषि और वैदिक काल की प्राचीन अग्नि तकनीक "होमा" शामिल है।

होमा ध् होमा थेरापी

होमा एक संस्कृत शब्द है एवं वैदिक विज्ञान के अनुसार एक तकनीकी शब्द भी है जो अग्नि के माध्यम से वायुमंडल की विषाक्त स्थितियों को हटाने की प्रक्रिया को दर्शाता है। होमा फायर तकनीक जिसे 'अग्निहोत्र' कहा जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप में हिंदू धर्म का एक प्रसिद्ध अनुष्ठान है और इस अग्नि तंत्र को करने वालों को 'अग्निहोत्री' कहा जाता है। 20वीं शताब्दी के मध्य में होमा फायर तकनीक का नवीनीकरण अक्कलकोट, महराष्ट्र के "परम सद्गुरु श्री गजानन महाराज" द्वारा किया गया था और बाद में, उनके एक शिष्य "वसंत

परांजपे" ने भारत और विदेशों में इस तकनीक को लोकप्रिय बनाना शुरू कर दिया। वर्ष 1981 में पहली बार सार्वजनिक रूप से अग्निहोत्र का प्रदर्शन पोलैंड में वसंत परांजपे और उलरिच बर्क (जर्मन एसोसिएशन ऑफ होमा थेरापी के संस्थापक) द्वारा किया गया था। अग्निहोत्र में, स्थानीय गायों के सूखे गोबर, घी (अनसाल्टेड मक्खन), बिना पॉलिश वाला अक्षत चावल को विशेष मंत्रों के गायन के साथ एक उल्टे पिरामिड के आकार के तांबे के बर्तन में जलाया जाता है। अग्निहोत्र को सूर्योदय और सूर्यास्त के जैव-ताल से जोड़ा जाता है। इसलिए, यह आमतौर पर दिन की इन अवधियों के दौरान किया जाता है। यह माना जाता है कि जैव-लय के साथ गूंज में गाए जाने वाले मंत्र विशेष कंपन को सक्रिय करते हैं, जो एक विशेष उपचार वातावरण का उत्पादन करते हैं। होमा थेरापी का केंद्रीय विचार है यह वातावरण को शुद्ध करते हैं। होमा थेरेपी के प्रवर्तकों का तर्क है कि भले ही यह वैदिक तकनीक वैज्ञानिक युग से पहले विकसित हुई हो, परन्तु यह एक 'प्रकट विज्ञान' है।

होमा जैविक खेती की प्रमुख विधियाँ

होमा जैविक खेती को आधुनिक संदर्भ में वृक्षा आयुर्वेद (वृक्षों के स्वास्थ्यपूर्ण विकास एवं पर्यावरण की सुरक्षा संबंधित चिंतन) के एक संशोधित संस्करण की तरह माना जाता है। इस कृषि पद्धति में बीजों या फसलों का रोपण विशिष्ट दिनों जैसे पूर्णिमा या अमावस्या के दिनों में किया जाता है। उदाहरण के लिए, अमावस्या पर या उससे पहले 'मूल फसलें' लगाए और पूर्णिमा के दिन या उससे पहले 'जमीन के ऊपर की फसलें' लगाएं। होमा जैविक खेती की मूल तकनीक अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र का समय इसकी प्रभावशीलता का एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। होमा जैविक खेतों में अग्निहोत्र प्रतिदिन दो बार (सुबह और शाम) किया जाता है। वास्तव में, यह खेती पद्धति खेत के प्रदूषण के नकारात्मक प्रभावों को एक स्वस्थ वातावरण में परिवर्तित करने के लिए 'अनुनाद के विज्ञान' का उपयोग करती है। इसलिए, होमा जैविक खेती की शुरुआत में ही होमा थेरेपी स्वयंसेवक जो अनुनाद बिंदु स्थापित करने के लिए अधिकृत है, अग्निहोत्र का संचालन करने के लिए खेत में विशिष्ट प्रतिध्वनि बिंदुओं (एक प्रतिध्वनि बिंदु प्रति 200 एकड़) की पहचान करता है। एक अनुनाद बिंदु "मंत्र के साथ सक्रिय 10 नए तांबे पिरामिड की एक विशेष व्यवस्था" को संदर्भित करता है। इस खेती की पद्धति को पूरी तरह से कृषि संसाधन आधारित और लागत प्रभावी माना जाता है। क्योंकि, केवल अग्निहोत्र राख और अग्निहोत्र राख आधारित उत्पाद पौधों के पोषण और कीटों और रोगों के नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाते हैं।

होमा जैविक खेती के प्रवर्तकों का दावा है कि पौधों और मिट्टी के पोषण का 75 प्रतिशत से अधिक वातावरण के माध्यम से आता है और अग्निहोत्र पौधों को पोषण देने के लिए वातावरण में पोषक तत्वों को छोड़ता है। इसके अलावा, शुद्ध वातावरण समय पर बारिश लाने के साथ कीटों के प्राकृतिक शिकारियों और अन्य लाभकारी कीड़ों को आकर्षित करता है। होमा ऑर्गेनिक फार्मिंग इकोसिस्टम में कीटों और लाभकारी कीड़ों की संख्या में संतुलन बना के रखता है। हालांकि, कभी-कभी गंभीर कीट और रोग के हमलों को नियंत्रित करने के लिए 'अग्निहोत्र राख पाउडर' और 'अग्निहोत्र राख समाधान' जैसे होमा उत्पादों का उपयोग किया जाता है। दक्षिण अमेरिका के होमा जैविक कृषि व्यवसायी भी अग्निहोत्र राख आधारित जैव उर्वरक 'ग्लोरिया बायोलोल' का उपयोग करते हैं। यह अग्निहोत्र ऐश, केंचुआ कास्टिंग, ताजा गाय के गोबर, गोमूत्र, पानी आदि का उपयोग करके जैव-डाइजेस्टर में अवायवीय परिस्थितियों में तैयार एक तरल जैव-उर्वरक है। यह वाणिज्यिक उत्पाद मुख्य रूप से पौधों को फिर से जीवंत करने और कीट और बीमारियों को नियंत्रित करके पौधों की वृद्धि को बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है। श्री वसंत परांजपे ने अपनी पुस्तक 'होम थेरेपी-आवर लास्ट चांस (होमा थेरेपी-हमारा आखिरी मौका)' में मिट्टी और पौधों की प्रणाली के लिए 'अग्निहोत्र' के लाभकारी प्रभावों का उल्लेख किया है। उन्होंने दावा किया कि होमा का वातावरण जल की धारण क्षमता, पोषक तत्वों की उपलब्धता और मिट्टी की बनावट में सुधार करके मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाता है। इसके अलावा, होमा वायुमंडल क्लोरोफिल उत्पादन और संवहनी प्रणाली की पारगम्यता को बढ़ाकर पौधे के

चयापचय को गति देता है।

होमा जैविक खेती की वैज्ञानिक समीक्षा

घर और आसपास के स्थानों की कीटाणुशोधन के लिए सूखे गोबर को जलाना एक सदियों पुरानी प्रथा है। महाराष्ट्र के राठी विज्ञान महाविद्यालय में किए गए एक अध्ययन में, यह देखा गया कि अग्निहोत्र से निकलने वाले धुएं वातावरण की सूक्ष्मजीवों की आबादी को प्रभावी ढंग से कम करते हैं, जो विभिन्न रोग और बीमारियों का कारण बनते हैं। रूसी वैज्ञानिक सिरोविश के अनुसार, गाय के घी में मानव शरीर को रेडियोधर्मी तरंगों के दुष्प्रभाव से बचाने की अपार शक्ति है। यह भी बताया गया है कि जब गाय के घी को चावल के साथ जलाया जाता है, तो यह एथिलीन ऑक्साइड, प्रोपलीन ऑक्साइड, फॉर्मलाडेहाइड और बीटा-प्रोपियोलेक्टोन जैसी गैसों का उत्पादन करती है जिनका सूक्ष्मजीवों पर निरोधात्मक प्रभाव होता है। वास्तव में, एथिलीन ऑक्साइड और फॉर्मलाडेहाइड गैसों का उपयोग आमतौर पर चिकित्सा और दवा उत्पादों को निष्फल करने के लिए किया जाता है, क्योंकि वे वायरस, बैक्टीरिया, कवक आदि को कुशलता से मारते हैं। जब प्रोपलीन ऑक्साइड चांदी ऑक्साइड के साथ प्रयोग किया जाता है जो कृत्रिम बारिश को प्रेरित करता है। इसलिए, गाय के घी का उपयोग करके किया गया अग्निहोत्र ध् यज्ञ वातावरण को शुद्ध करने और बारिश लाने के लिए एक अच्छी गतिविधि माना गया है।

अग्निहोत्र में उत्पन्न अत्यधिक ऊर्जावान राख को होमा जैविक खेती के इकलौता शस्त्र के रूप में जाना जाता है। यह अग्निहोत्र राख का उपयोग खेती के सभी चरणों जैसे मृदा उपचार, जल उपचार, बीज उपचार में लाभदायक है। हालांकि, अग्निहोत्र राख के साथ-साथ बुनियादी कृषि क्रियाये भी आवश्यक है। अग्निहोत्र राख के लाभकारी प्रभाव के बारे में कई शोध रिपोर्ट हैं। जर्मनी में एक अध्ययन से पता चला है कि अग्निहोत्र राख के उपयोग से मिट्टी में फास्फोरस की घुलनशीलता में सुधार हुआ है, क्योंकि अग्निहोत्र राख के साथ उपचारित मिट्टी में मौजूद जल निकालने योग्य फास्फोरस (पौधों के लिए उपलब्ध फास्फोरस) अनुपचारित मिट्टी की तुलना में 10 गुना अधिक था। एक अन्य अध्ययन से पता चला है कि अग्निहोत्र राख के प्रयोग ने नाइट्रोजन फिक्सर्स और फॉस्फेट सॉल्युबिलाइजर जैसे मिट्टी के जीवाणु की आबादी में वृद्धि की है और कवक वनस्पतियों को कम किया है। मिट्टी के बढ़े हुए स्वस्थ माइक्रोफ्लोरा से केंचुए जैसे अन्य लाभकारी मिट्टी जीवों की संख्या में वृद्धि होती है। केंचुए मिट्टी में मृत कार्बनिक पदार्थों को खाते हैं और उनके उत्सर्जन (केंचुआ कास्टिंग) मिट्टी को निषेचित करते हैं। कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़ (कर्नाटक) के एक अध्ययन ने होमा जैविक खेती से मृदा स्वास्थ्य में सुधार और सोयाबीन की फसल में सुधार की सूचना दी। उन्होंने बताया है कि होमा जैविक कृषि उपचार क्षेत्रों के मिट्टी में उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, तांबा, जस्ता, मैंगनीज और लोहे की मात्रा पारंपरिक कृषि क्षेत्रों की तुलना में अधिक थी। इसके अलावा, पारंपरिक कृषि क्षेत्रों की तुलना में होमा कृषि क्षेत्रों में उच्च डिहाइड्रोजनेज गतिविधि भी देखी गई।

निष्कर्ष

होमा ऑर्गेनिक खेती को सबसे अच्छी लागत प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल विधि बताया गया है। हालांकि, इस खेती के तरीके के पीछे के विज्ञान को दावा किए गए लाभों को बढ़ावा देने के लिए अधिक अनुसंधान करने की आवश्यकता है। इस कृषि पद्धति की अनुसंशाये करने से पहले वैज्ञानिक तरीकें से विभिन्न फसलो में भिन्न भिन्न कृषि पारिस्थिति ताल में बहुस्थानीय अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

गंधक - फसल उत्पादन के लिए प्राथमिक महत्व का एक द्वितीयक पोषक तत्व

राहुल मिश्रा, सीमा भारद्वाज, निशांत कुमार सिन्हा, धीरज कुमार, जीतेंद्र कुमार एवं संजीब कुमार बेहरा

भाकृअनुप- भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

गंधक तेरहवाँ तत्व है, जो पृथ्वी की पपड़ी का लगभग 0.06–0.10% हिस्सा है। गंधक फसल उत्पादन के लिए एक आवश्यक पोषक तत्व है और इसे कभी-कभी चौथा प्रमुख पोषक तत्व भी कहा जाता है। इसे कैल्शियम और मैग्नीशियम के साथ द्वितीयक पोषक तत्व के रूप में वर्गीकृत किया गया है, लेकिन इसे नाइट्रोजन के बाद दूसरे स्थान पर महत्व दिया जाता है। पौधों में गंधक की सांद्रता 0.05% से 0.90% तक हो सकती है। गंधक प्रोटीनयुक्त अमीनो एसिड जैसे मेथियोनीन और सिस्टीन, ग्लूटाथियोन, विटामिन (बायोटिन और थायमिन), फाइटोकेलेटिन, क्लोरोफिल, कोएंजाइम ए और एस-एडेनोसिल-मेथियोनीन का एक घटक है। गंधक प्रोटीन में डाइसल्फ़ाइड बंध निर्माण और एंजाइम के विनियमन में भी शामिल है, एवं विशेष रूप से रेडॉक्स नियंत्रण में। यह ग्लूटाथियोन और इसके डेरिवेटिव के माध्यम से ऑक्सीकरण द्वारा क्षति से सुरक्षा प्रदान और पौधे की समग्र चयापचय प्रक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसके अलावा, पौधों में गंधक और गंधक युक्त यौगिक सीधे या परोक्ष रूप से जैविक और अजैविक तनाव प्रबंधन, चयापचय और संकेतन में भाग लेते हैं। पौधों की वृद्धि और विकास में गंधक की समग्र भूमिका को चित्र 1 में संक्षेपित किया गया है।

1950 के दशक में, फसल में गंधक की कमी सर्वव्यापी नहीं थी, लेकिन समय के साथ यह आम हो गई है । 2009 से 2015 तक, वैश्विक स्तर पर गंधक उर्वरक का उपयोग 6.65 से 7 मिलियन मेगा ग्राम तक बढ़ गया। हाल के वर्षों में फसल उत्पादन में सीमित पोषक तत्व के रूप में गंधक कई कारणों से अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इनमें अधिक गंधक की आवश्यकता वाली फसल की अधिक पैदावार, उच्च विश्लेषण वाले उर्वरकों में कम गंधक अशुद्धियाँ, गंधक युक्त कीटनाशकों का कम उपयोग, वायुमंडल में औद्योगिक गंधक उत्सर्जन में कमी। 2000 और 2020 के बीच मिट्टी में पौधों के लिए उपलब्ध गंधक की मात्रा में 34-86% की कमी आई है। आमतौर पर, गंधक की कमी रेतीली मिट्टी या कम कार्बनिक पदार्थ वाली मिट्टी में अधिक पाई जाती है, क्योंकि इन मिट्टी से निकलने वाली तरल की दर बहुत अधिक होती है। गंधक उर्वरक स्रोत के अनुसार यह तरल की दर अलग-अलग होती है, जो अमोनियम सल्फेट के लिए 72%, माइक्रोनाइज्ड एलिमेंटल गंधक के लिए 26% और क्ले बाउंड गंधक (बेंटोनाइट + एलिमेंटल एस) के लिए 7% होती है।

गंधक की कमी और गंभीरता को निर्धारित करने में जलवायु, मिट्टी और फसल का चयन सभी की भूमिका होती है। इसके अलावा, दुनिया भर में पहले से गंधक-पर्याप्त मिट्टी में गंधक की कमी आम होती जा रही है। औसतन, भारत में लगभग 11.4, 29.4 और 17.8% मिट्टी में गंधक की तीव्र कमी, अपर्याप्तता और अव्यक्त कमी है। जबकि, 12.1, 11.6 और 17.7% मिट्टी में गंधक की उपलब्धता क्रमशः मामूली रूप से पर्याप्त, पर्याप्त और उच्च है (शुक्ला एंव संहयोगी 2021)। तुलनात्मक रूप से, हरियाणा (22.9%), केरल (31.4%), ओडिशा (29.5%), राजस्थान (33.9%) और पश्चिम बंगाल (28.6%) जैसे राज्यों में मिट्टी का उच्च प्रतिशत उपलब्ध गंधक में तीव्र कमी वाला है। असम, बिहार, गोवा, गुजरात, झारखंड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में 60% से अधिक मिट्टी उपलब्ध गंधक में कमी वाली (तीव्र कमी, कमी और अव्यक्त कमी सहित) है। राज्यवार (मृदा नमूनों का %), मृदा में पौधों के लिये उपलब्ध गंधक की स्थिति (तीव्र कमी एवं कमी), चित्र 2 में प्रस्तुत की गई है।

चित्र 1: गंधक की समग्र भूमिका

मिट्टी में गंधक के स्रोत

मृदा में कुल गंधक सामग्री 50 से 100,000 मिलीग्राम गंधक किग्रा$^{-1}$ के बीच होती है, जिसमें उप-मृदा में 40-200 मिलीग्राम गंधक/ किग्रा और सतह (वातित) मृदा में 56-618 मिलीग्राम गंधक/ किग्रा होता है। मिट्टी में गंधक के विभिन्न स्रोत पाए जाते हैं। मिट्टी में मौजूद कुल गंधक की मात्रा का लगभग 95% हिस्सा कार्बनिक पदार्थों में होता है। कार्बनिक पदार्थ के टूटने या अपघटन के परिणामस्वरूप कार्बनिक गंधक का खनिजीकरण SO_4^{2-} में होता है, जो पौधों के लिए उपलब्ध होता है। कार्बनिक पदार्थों के अलावा, मिट्टी के अंदर विभिन्न खनिजों में भी गंधक के विभिन्न रूप होते हैं। इसलिए, इन खनिजों के टूटने या अपक्षय के परिणामस्वरूप गंधक का एक हिस्सा सल्फेट में बदल जाता है। मिट्टी में गंधक युक्त कुछ खनिज शामिल हैं: जैसे पाइराइट: (आयरन सल्फाइड), गैलेना: (लेड सल्फाइड), स्फालेराइट: (जिंक सल्फाइड), स्टिब्नाइट: (एंटीमनी सल्फाइड), जिप्सम: (कैल्शियम सल्फेट), एलुनाइट: (पोटेशियम एल्युमिनियम सल्फेट), बैराइट: (बेरियम सल्फेट), चाल्कोसाइट: (कॉपर सल्फाइड), चाल्कोपीराइट: (तांबा-लौह सल्फाइड), सिनेबार: (पारा सल्फाइड), कीसेराइट: (मैग्नीशियम सल्फेट)

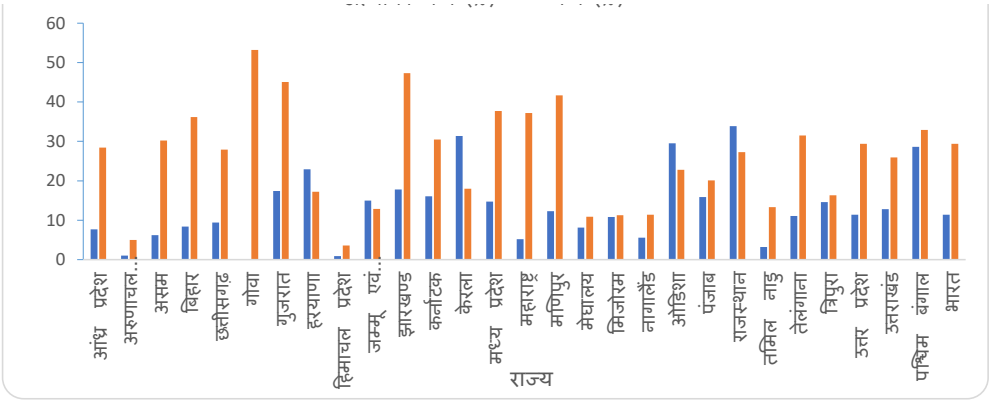

चित्र 2: राज्यवार मृदा में पौधों के लिये उपलब्ध गंधक की स्थिति (तीव्र कमी एवं कमी)

पौधों में गंधक की कमी के लक्षण

गंधक की कमी से फसलों की गुणवत्ता और उपज खराब होती है। गंधक की कमी से जड़ की हाइड्रोलिक चालकता में कमी आ जाती है, जो संभवतः जड़ से लेकर शाखा तक पोषक तत्वों की कमी का संकेत देती है। फसल के आधार पर, जिन पौधों में 0.1 से 0.2% से कम गंधक होता है, वे गंधक की कमी से पीड़ित होते हैं। जिन पौधों में N:S अनुपात 16:1 से अधिक होता है, उनमें भी गंधक की कमी होने का संदेह हो सकता है। गंधक की कमी सबसे पहले युवा वृद्धि पर दिखाई देती है क्योंकि पौधों में गंधक स्थिर होता है। युवा पत्तियों के सामान्य हरे रंग का फीका पड़ना और उसके बाद क्लोरोसिस होना सामान्य कमी का लक्षण है। ब्रैसिका में, जो गंधक की कमी के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं, लेमिना सीमित होता है, पत्तियों के किनारों के कर्लिंग और बढ़ते बिंदुओं के रुकने के कारण पत्तियां कपिंग दिखाती हैं। पुरानी पत्तियां शिराओं के बीच अंदर की ओर उभरे हुए क्षेत्रों के साथ सिकुड़ जाती हैं। पुरानी पत्तियों में नारंगी या लाल रंग की आभा विकसित होती है और समय से पहले गिर सकती है। महत्वपूर्ण पौधों में गंधक की कमी के लक्षणों का सारांश तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1: पौधों में गंधक की कमी के लक्षण

पौधों	कमी के लक्षण
गेहूँ	पौधे का रंग पीला पड़ना तथा शिराओं के बीच अधिक दिखाई देना।
धान	पीले रंग का पत्ती आवरण और पत्ती ब्लेड। पौधे की ऊंचाई और कलियों की संख्या में कमी। कम पुष्पगुच्छ, छोटे और कम दाने।
मक्का	प्रारंभिक अवस्था में, युवा पत्तियों में शिराओं के बीच पीलापन आ जाता है। बाद में, तने के आधार पर तथा पत्तियों के किनारों पर लालिमा आ जाती है।
चना	पौधे सीधे खड़े दिखाई देते हैं, समय से पहले सूख जाते हैं, तथा युवा पत्तियां मुरझा जाती हैं।
सूरजमुखी	पत्तियां और फूल पीले पड़ जाते हैं। पौधे छोटे हो जाते हैं और उनमें छोटी गांठें रह जाती हैं। पत्तियों की संख्या और आकार कम हो जाता है।
मूंगफली	पौधे की ऊँचाई छोटे "V" आकार का इंठल दिखाई देता है। नई पत्तियाँ, मुख्य शिरा के आस-पास का क्षेत्र पीला हो सकता है। बीज की परिपक्वता में देरी।
गन्ना	पत्तियाँ पीले-हरे रंग की हो जाती हैं। पुरानी पत्तियाँ हल्के बैंगनी रंग की दिखाई देती हैं। तने पतले होते हैं और सिरे की ओर पतले होते हैं।
चाय	गंधक की कमी से झाड़ियाँ पीली हो जाती हैं, पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है, बीच की गांठें छोटी हो जाती हैं, पूरा पौधा सिकुड़ा हुआ दिखाई देता है। पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और उनके किनारे और सिरे भूरे हो जाते हैं।
तंबाकू	युवा पत्तियाँ एक समान रूप से हल्के पीले हरे रंग की होती हैं। पत्तियाँ छोटी होती हैं और अंतरग्रंथियाँ छोटी होती हैं।
केला	युवा पत्तियों में हरित हीनता दिखती है। गंभीर गंधक की कमी की स्थिति में शिराओं के बीच हरित हीनता हो जाती है। विकास रुक जाता है और छोटे फल बनते हैं।
कॉफी	युवा पत्तियों का रंग पीला दिखाई देता है, परिपक्व पत्तियों का रंग छोटा दिखाई देता है, तथा अंतःशिरा ऊतक धब्बेदार दिखाई देते हैं।

फसल की पैदावार पर गंधक के प्रयोग का प्रभाव

गंधक की कमी वाली मिट्टी पर उगाई जाने वाली फसलों की उपज और गुणवत्ता दोनों में कमी आती है, जब तक कि उर्वरक उपचार में गंधक को शामिल न किया जाए। गंधक उर्वरक फसल की पैदावार और गुणवत्ता को बढ़ा सकता है और इसके परिणामस्वरूप उत्पादकों को महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ मिल सकता है। भारत में अनेक क्षेत्रीय प्रयोग किए गए, जिनसे उपज पर सकारात्मक प्रभाव प्रदर्शित हुआ (चित्र 3)। गंधक की कमी वाली मिट्टी पर गंधक के प्रयोग से फसल की पैदावार में वृद्धि: क्रमशः मूंगफली में 32%, सोयाबीन में 25%, सूरजमुखी में 20%, सरसों में 30%, अरहर में 22%, चावल में 17%, गेहूं में 25%, मूंग में 20%, अलसी में 16% हुई। अधिकांश परीक्षण गेहूं और चावल के साथ किए गए, उसके बाद सरसों, सोयाबीन और मूंगफली का परीक्षण किया गया। गंधक के प्रयोग से औसत उपज में 14 से 60% तक की वृद्धि हुई। अधिकांश फसलों में 20 किग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर से लेकर 30 किग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर तक की उपज में वृद्धि महत्वपूर्ण रूप से देखी गई, जो यह दर्शाता है कि कई स्थानों पर फसल 30 किग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर से अधिक की दर पर प्रतिक्रिया करती है। कई रिपोर्टों के अनुसार, गंधक के प्रयोग से चावल की उपज में 702-920 किग्रा./हेक्टेयर, गेहूं की उपज में 813-842 किग्रा./हेक्टेयर की वृद्धि हुई, जबकि मक्का और ज्वार के मामले में क्रमशः 739-837 किग्रा./हेक्टेयर और 470-638 किग्रा./हेक्टेयर की वृद्धि हुई। सामूहिक रूप से, 30-40 किग्रा गंधक प्रति हेक्टेयर के प्रयोग से अनाज की उपज में 750 किग्रा./हेक्टेयर की वृद्धि हुई, जो अवशिष्ट प्रभाव को ध्यान में रखे बिना 21 किग्रा. अनाज/किलोग्राम गंधक की दर से हुई।

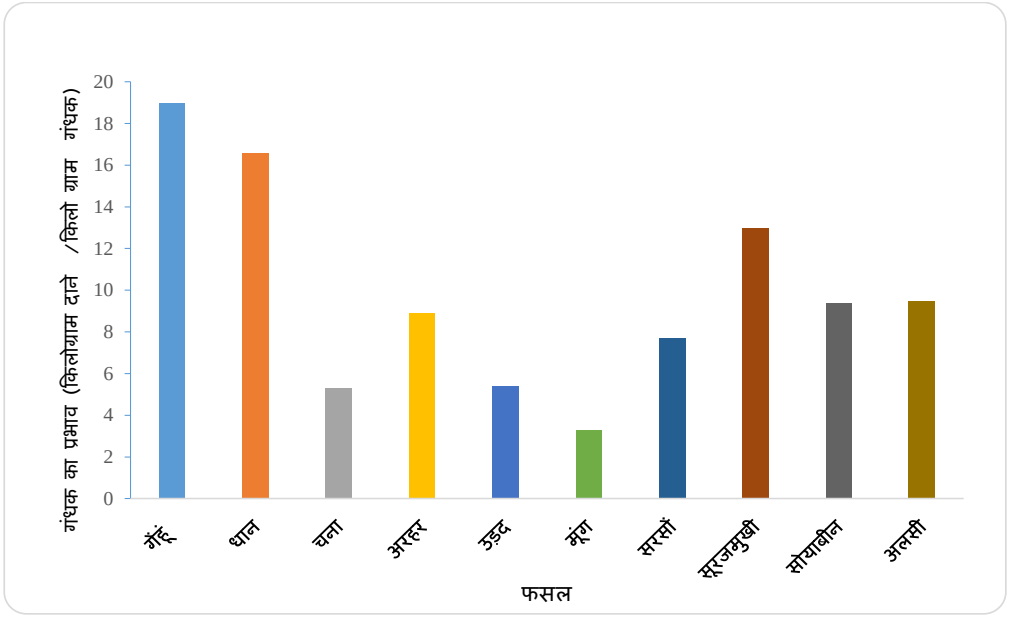

चित्र 3: क्षेत्र की स्थितियों के तहत गंधक अनुप्रयोग के प्रति औसत फसल उपज

फसल उत्पादन के लिए गंधक का प्रबंधन

गंधक की कमी वाली मृदाओं में गंधक के प्रयोग से न केवल फसलों की उपज में वृद्धि होती है, बल्कि फसलों की गुणवत्ता में भी सुधार होता है। उदाहरण के तौर पर गंधक के प्रयोग से तिलहनी फसलों के बीज में तेल एवं दलहनी फसलों में प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है।

गंधक के उर्वरक स्रोत

पोषक तत्व के रूप में बाजार में उपलब्धता के आधार पर गंधक की आपूर्ति मुख्य रूप से: जिप्सम, सिंगलसुपर फास्फेट, तत्वीय गंधक, अमोनियम सल्फेट, बेंटोनाइट गंधक तथा कभी कभी पोटाशियम सल्फेट, जिंक सलफेट, फैरस सल्फेट इत्यादि के द्वारा की जाती है।

तालिका 2: गंधक के विभिन्न स्रोत एंव उनके पोषक संघटक

उर्वरक/स्रोत का नाम	गंधक (%)
अमोनियम सल्फेट	24
अमोनियम फॉस्फेट सल्फेट	15
जिप्सम	15-18
फास्फो जिप्सम	13-18
सिंगल सुपर फॉस्फेट	12
पोटासियम सल्फेट	18
तत्वीय गंधक	85-95
जिंक सल्फेट	11
आयरन पायराइट	22

पायराइट तथा तत्वीय गंधक की उपयोग दक्षता कम होने के कारण इन्हें कम प्रभावशाली स्रोत की श्रेणी में रखा गया है। किन्तु बुवाई के 10 से 15 दिन पहले नमी युक्त मृदा की सतह पर छिड़काव करने के उपरांत इसमें गंधक की ऑक्सीकरण की प्रतिक्रिया से इनकी दक्षता में वृद्धि की जा सकती है।

गंधक प्रबंधन:

मृदा में गंधक की आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रबंधन आवश्यक है। फसल में नाइट्रोजन की पूर्ती के लिए यूरिया का उपयोग अधिकांश रूप से किया जाता है ,मृदा में गंधक की कमी होने पर लगभग एक तिहाई नाइट्रोजन की पूर्ती के लिए अमोनियम सलफेट के उपयोग को प्राथमिकता देनी चाहिए क्योंकि यह नाइट्रोजन के साथ साथ फसल को गंधक भी प्रदान करता है ,जिप्सम का उपयोग भी मृदा में कैल्शियम एवं गंधक प्रदान करता है ,बेंटोनाइट गंधक के उपयोग से भी गंधक तत्व पौधों को उपलब्ध रूप में मिल जाता है ,फसलों में पुष्पन की अवस्था से थोड़ा पहले ही गंधक उर्वरक को डाल देना चाहिए जिससे पौधे को यह सही समय पर उपलब्ध हो सके। गंधक उर्वरक को क्यारियों मैं थोड़ा दूरी पर डालना चाहिए जिससे यह सुनिश्चित हो सके की फॉस्फोरस उर्वरक क्यारियों में बीज के नजदीक हो व रेक की सहायता से पाऊडर रूप में या गोलियों/दानेदार गंधक के रूप में दिया हुआ गंधक उर्वरक सामान रूप से मृदा में मिल जाये। गंधक के निक्षालन को कम करने के लिए अधिक वर्षा की स्थिति में गंधक को नहीं डालना चाहिए।

मृदा में गंधक प्रबंधन को प्रभावित करने वाले कारक

- मृदा पी.एच: मृदा का अम्लीय व क्षारीय होना उसमें हो रही रासायनिक क्रियाओं को निर्धारित करता है।
- मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ की मात्रा ज्यादा होने पर अधिक समय तक मृदा में गंधक को सहज कर रखती है जो पौधों द्वारा जरूरत पड़ने पर धीरे धीरे उपलब्ध होती जाती है।
- उर्वरक देने की विधि सही होने पर बीज को नुक्सान नहीं होता अतः बुवाई की गई जगह से थोड़ी दूरी

पर ही पंक्तियों में गंधक उर्वरक को डालना चाहिए।

- मृदा परिक्षण के आधार पर गंधक की कमी या अधिकता से सम्बंधित जानकारी उर्वरक निर्धारण में सहायक होती है।
- पीड़कनाशी का उपयोग मृदा में गंधक ऑक्सीकरण की दर को घटा कर या बढ़ा कर गंधक उपलब्धता को प्रभावित करता है।
- तापमान एवं आर्द्रता मृदा में गंधक की उपलब्धता को प्रभावित करते हैं जो गंधक ऑक्सीकरण दर द्वारा निर्धारित होती है।
- निचली मृदा में सल्फेट की उपस्थिति अधिक होने से कम आवश्यकता होती है।
- गत वर्षों में मृदा में दिया गया गंधक वर्तमान में इसकी उपयोग की जाने वाली मात्रा को प्रभावित करता है।
- फसल प्रणाली: अधिकांश तिलहनी व दलहनी फसलों वाली फसल प्रणालियों मै गंधक की आवश्यकता अधिक होती है।

खीरा उत्पादन की वैज्ञानिक खेती

कुन्ती बंजारे[1], हेमलता निराला[1], प्रतिभा सिंह[1], नारायण लाल[2] एवं रेवेन्द्र सिंह वर्मा[1]

[1]कृषि महाविद्यालय एंव अनुसंधान केन्द्र, बेमेतरा (छ.ग.)
[2]भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान

खीरा की उत्पत्ति मूलतः भारत से ही हुई है तथा लता वाली सब्जियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान हैं। इसके फलों का उपयोग मुख्य रूप से सलाद के लिये किया जाता है। इसके फलों के 100 ग्राम खाने योग्य भाग में 96.3 प्रतिशत जल, 2.7 प्रतिशत कार्बोंहाइड्रेट, 0.4 प्रतिशत प्रोटीन, 0.12 प्रतिशत वसा तथा 0.4 प्रतिशत खनित पदार्थ पाया जाता है । इसके अलावा इसमें विटामिन बी की प्रचुर मात्राएं पायी जाती है। खीरे के फलों की तासीर ठण्डी होती है तथा कब्ज दूर करने में सहायक है। खीरे के रस का उपयोग करके कई तरह के सौंदर्य प्रसाधन बनायें जा रहे है। देश के सभी प्रदेशों में इसकी खेती प्राथमिकता के आधार पर की जाती है।

जलवायु

इसकी खेती के लिये अधिकतम तापमान 40 डिग्री सेल्सियस तथा न्यूनतम 20 डिग्री सेल्सियस होना चाहिये। अच्छी बढ़वार एवं फल फूल के लिये 25-30 डिग्री. सेल्सियस तापमान अच्छा होता है। अधिक वर्षा आद्रता तथा बदली होने से कीटो एवं रोंगों के प्रसार में वृद्धि होती है। अधिक तापमान तथा प्रकाश की अवस्था में नर फूल अधिक निकलते हैं। जबकि इसके विपरीत मौसम होने पर मादा फूलों की संख्या अधिक होती है।

भूमि

खीरा की खेती के लिये बलुई दोमट या दोमट भूमि जिसमें जल निकास का उचित प्रबंधन हो सर्वोत्तम होती है। भूमि में कार्बन की मात्रा अधिक तथा पी.एच. मान 6.5-7.0 या उदासीन होना चाहिये। खीरा मुख्य रूप से गर्म जलवायु की फसल है। इस पर पाले का प्रभाव अधिक होता है।

उन्नत किस्में

स्वर्ण अगेती:

यह एक अगेती किस्म है। बुआई के 40-42 दिन बाद प्रथम तुड़ाई की जा सकती है। इसके फल मध्यम आकार के हल्के हरे सीधे तथा क्रिस्पी होते है। इस प्रजाति की बुआई फरवरी तथा जून के महीनें में की जा सकती है। फलों की संख्या प्रति पौध लगभग 15 होती है। फलों की तुड़ाई फल लगने के 5-6 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिये। सामान्य दशा में 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल से 200-250 क्विंटल उपज प्राप्त होती है।

स्वर्ण पूर्णिमाः

यह मध्यम अवधि में तैयार होने वाली फसल है। इसके फल लम्बे हल्के हरे, सीधे तथा ठोस होते है। फलों की तुड़ाई बुआई के 45-47 दिनों के बाद शुरू हो जाती है। फलों की तुड़ाई 2-3 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिये। सामान्य दशा में 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल से 200-225 क्विंटल उपज प्राप्त होती है।

पंत संकर खीरा -1:

इस संकर प्रजाति की बुआई के लगभग 50 दिनों के बाद फल तुड़ाई के लिये तैयार हो जाते हैं। फल मध्यम आकार के (20 से.मी कुल लंबाई) तथा हरे रंग के होते है। यह संकर प्रजाति मैदानी तथा पहाड़ी भागों वाले क्षेत्रों में लगाने के लिये उपयुक्त है। सामान्य दशा में 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल से 300-350 कु0 उपज प्राप्त होती है।

खाद्य एवं उर्वरक

खीरा की खेती के लिये 80 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर देना चाहिये। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय मेड़ पर देना चाहिये। शेष नत्रजन की मात्रा दो बराबर भागों में बांटकर बुआई के 20 एवं 40 दिनों बाद गुड़ाई के साथ देकर मिट्टी चढ़ा देना चाहिये।

बुआई का समय

मुख्य फसल के रूप में मेदानी क्षेत्रों में बुआई फरवरी एवं जून के प्रथम सप्ताह में करते है। दक्षिण भारत में इसकी बुआई जून से लेकर अक्टूबर तक करते है। जबकि उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी बुआई अप्रैल से मई में की जाती है। गर्मी की फसल को जल्दी लेने के लिये पालिथीन की थैलियों में जनवरी में पौध तेयार कर फरवरी में रोपण करते हैं।

बीज की मात्रा

1 हेक्टेयर क्षेत्र की बुआई के लिये 2-2.25 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज की बुआई करने से पहले फफूंदीनाशक दवा जेसे कार्बेंडाजिम या डाईथेन एम.-45 (2 ग्रा/कि.ग्रा. बीज) से अच्छी तरह बीज उपचार करना चाहिये।

बुआई की विधि

अच्छी तरह से तैयार खेत में 1.5 मीटर की दूरी पर मेड़ बना लें। मेड़ों पर 60 से.मी. की दूरी पर बीज बोने के लिये गड्ढे बना लेना चाहिये। 1 गड्ढे में दो बीजों की बुआई करते है।

सिंचाई

बुआई के समय खेत में नमी पर्याप्त मात्रा में रहनी चाहिये अन्यथा बीजों का अंकुरण अच्छी प्रकार से नहीं होती है। बरसात वाली फसल के लिये सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है। औसतन गर्मी की फसल को 5वें दिन तथा जाड़े की फसल को 10-15 दिनों पर पानी देना चाहिये। तने की वृद्धि फूल आने के समय तथा फल की बढ़वार के समय पानी की कमी नहीं होनी चाहिये।

खरपतवार नियंत्रण एवं निराई-गुड़ाई

वर्षा कालीन फसल में खरपतवार की समस्या अधिक होती है। जमाव से लेकर प्रथम 25 दिनों तक खरपतवार फसल को ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं। इससे फसल की वृद्धि पर प्रतिकूल असर पड़ता है। तथा पौधें की बढ़वार रुक जाती है। अतः खेत में समय-समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिये। खरपतवार निकालने के बाद खेत की गुड़ाई करके जड़ों के पास मिट्टी चढ़ाना चाहिये जिससे पोधों का विकास तेजी से होता है।

तुड़ाई एवं उपज

फल कोमल एवं मुलायम अवस्था में तोड़ना चाहिये। फलों की तुड़ाई दो तीन दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिये। खीरा की औसत उपज 150-250 प्रति क्विंटल हेक्टेयर होती है।

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

कद्दू का लाल कीट (रेड पम्पकिन बीटिल): इस कीट की सूण्डी जमीन के अंदर पाई जाती है। इसकी सूड़ी व वयस्क दोनों क्षति पहुंचाते है। प्रौढ़ पौधों की छोटी पत्तियों पर ज्यादा क्षति पहुंचाते है। ग्रब (इल्ली) जमीन में रहती है। जो पौधों की जड़ पर आक्रमण कर हानि पहुंचाती है। ये कीट जनवरी से मार्च के महीनें में अधिक सक्रिय होती है। अक्टूबर तक खेत में इनका प्रकोप रहता है। फसलों के बीज पत्र एवं 4-5 पत्ती अवस्था इन कीटों के आक्रमण के लिये सबसे अनुकूल है। प्रौढ़ कीट विशेषकर मुलायम पत्तियां अधिक पसंद करते है। अधिक आक्रमण होने से पौधे पत्ती रहित हो जाती है।

नियंत्रण: सुबह ओस पड़ने के समय राख का बुरकाव करने से भी प्रौढ़ पौधों पर नहीं बैठता जिससे नुकसान कम होता हैं। इस कीट का अधिक प्रकोप होने पर कीटनाशी जैसे डाईक्लोरोंवास 76 ई.सी,1.25 मिली../लीटर पानी में ट्राइक्लोफेरान 50 ई.सी 1 मिली/पानी की दर से जमाव के तुरन्त बाद एवं दोबारा 10वें दिन पर पर्णीय छिड़काव करें।

खीरे का पतंगा (डाईफेनीया इण्डिका): वयस्क मध्य आकार के तथा अग्र पंख सफेदी लिये हुये ओर किनारे पर पारदर्शी जुड़े हुये धब्बे पाये जाते है। सूण्डी लम्बे, गहरे, हरे ओर पतली होती है। ये पत्तियों के क्लोरोफिल युक्त भाग को खाते हैं जिससे पंत्तियों में नसों का जाल दिखाई देता है। कभी-कभी फूल एवं फल को भी खाते है।

नियंत्रण: नियमित अंतराल पर सूड़ियों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिये। जैविक विधि से नियंत्रण के लिये बेसिलस थुरजेंसिस किस्म कुर्सटाकी/1 कि.ग्रा./हे. की दर से एक या दो बार 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार कीटनाशी जेसे क्लोरेंटानीलीप्रोल 18.5 एस.सी./0.25 मि.ली./ली. या डाइक्लोरोवास 76 ई.सी./ 1.25 मि.ली/ली. पानी की दर से भी छिड़काव कर सकते हैं।

सफेद मक्खी: यह सफेद एवं छोटे आकार का एक प्रमुख कीट है। पूरे शरीर मोम से ढंका होता है। इसलिये इसे सफेद मक्खी के नाम से जाना जाता है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ पौधों की पत्तियों से रस चुसते हैं और विषाणु रोग फैलाते है। जिसके कारण पौधें की बढ़ोत्तरी रूक जाती है। पत्तियाँ एवं शिरायें पीली पड़ जाती है।

नियंत्रण: मक्का, जवार या बाजरा को मेड़ फसल/अन्तः सस्यन के रूप में उगाना चाहिये जो अवरोधक का कार्य करते है। जिससे सफेद मक्खी का प्रकोप कम हो जाता है। जैव कीटनाशक जैसे वर्टीसिलियम लिकैनी / 5 मिली./ली. या पैसिलोमाइसेज फेरानोसस / 5 ग्राम/ली0 का प्रयोग भी किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार कीटनाशकों जैसे इमिडाईक्लोप्रिड 17.8 एस.एल./ 0.5 मिली./ली. या थायामेथेक्जाम 25 डब्ल्यूजी. / 0.35 ग्राम/ली. या फेनप्रोथ्रिन 30 ई.सी. / 0.75 ग्राम /ली0 डाईमेथोएट 30 ई.सी./ 2.5 मिली./ली. या स्पाइरोमेसिफेन 23 एस.सी./ 0.8 मिली/ली. की दर से छिड़काव करें।

माइट (लाल मकड़ी): लाल माइट बहुत छोटे कीट है जो पत्तियों पर एक ही जगह जाला बनाकर बहुत अधिक संख्या में रहते है। इनका प्रकोप ग्रीष्म ऋतु में अधिक होता है। इसके प्रकोप के कारण पौधें अपना भोजन नहीं बना पाते जिसके फलस्वरूप पौधें की वृद्धि रूक जाती है। तथा उपज में भारी कमी हो जाती है।

नियंत्रण: पावर छिड़काव मशीन द्वारा पानी का छिड़काव करने से मकड़ी अलग हो जाती है, जिससे प्रकोप में कमी आती है। मकड़ी नाशक जैसे स्पाइरोमैसीफेन 22.9 एस.सी./ 0.8 मिली/ली. या डाइकोफाल 18.5 ई.सी. / 5 मिली/ली. या फेनप्रोथ्रिन 30 ई.सी./ 0.75 ग्राम /ली0 की दर से 10-15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण

चूर्णी फफूंद (चूर्णिल आसिता): यह विशेष रूप से खरीफ वाली फसल पर लगता है। प्रथम लक्षण पत्तियां और तनों के सतह पर सफेद या धुंधलें धूसर धब्बों के रूप में दिखाई देते है तत्पष्चात् ये धब्बे चूर्ण युक्त हो जाते है। ये सफेद चूर्णिल पदार्थ अंत में समूचे पौधें की सतह को ढंक लेते है। जिसके कारण फलों का आकार छोटा हो जाता है। तथा बीमारी की गंभीर स्थिति में पोधों के पत्ते भी गिर जाते हैं।

नियंत्रण: इसकी रोकथाम के लिये रोग ग्रस्त पौधों को खेत में इकट्ठा करके जला देते है। फफूंदनाशक दवा जैसे 0.05 प्रतिषत ट्राइडीमोर्फअर्थात 1/2 मि.ली. दवा एक लीटर पानी घोल बनाकर सात दिन के अंतराल पर छिड़काव करें । इस दवा के न उपलब्ध होने फ्लूसिलाजोल का 1 ग्राम / लीटर या हेक्साकोनाजोल का 1.5 मि.ली/ली. या माइक्लोब्लूटानिल का 1 ग्राम /10 लीटर पानी के साथ 7 से 10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

मृदु रोमिल आसिता: यह रोग वर्षा के उपरान्त जब तापमान 20 से 22 डिग्री0 से0 हो तब तेजी से फैलता है। उत्तरी भारत में इस रोग का प्रकोप अधिक हैं। इस रोग से पत्तियों पर कोणीय धब्बे बनते है, अधिक आद्रता होने पर पत्ती के निचले सतह पर मृदु रोमिल कवक की वृद्धि दिखाई देती है।

नियंत्रण: बीजों को एप्रोन नामक कवकनाशी से 2 ग्राम दवा प्रति कि0ग्रा0 बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिये। इसके अलावा मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत (2.5 ग्राम/लीटर पानी) घोल का छिड़काव करते है। तथा पूरी तरह रोग ग्रस्त लताओं को उखाड़कर जला देना चाहिये। अगर बीमारी गंभीर अवस्था में हैं तो मेटालैक्सिल दिन मैंकोजेब का 2.5 ग्राम /लीटर की दर से या डाइमेयामर्फ का 1 ग्राम /लीटर मैटीरैम का 2.5 ग्राम / लीटर की दर से 7-10 के दिन अंतराल पर 3-4 बार छिड़काव करें।

खीरा मोजैक वायरस: इसमे रोगग्रस्त पोधौ के बीज का फैलाव कीट द्वारा होता है। इससे पौधों की नई पत्तियों में छोटे, और हल्के पीले धब्बों का विकास सामान्यतः शिराओं से शुरू होता है। पत्तियों में मोटलिंग सिकुड़न शुरू हो जाती है। पौधे विकृत तथा छोटे रह जाते है। हल्के पीले चित्तीदार लक्षण फलों पर भी उत्पन्न हो जाते है।

नियंत्रण: इसकी रोकथाम के लिये विषाणुमुक्त बीज का प्रयोग तथा रोगी पौधों को खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिये। विषाणु वाहक कीट के नियंत्रण के लिये डाईमेथोएट (0.05 प्रतिषत) रासायनिक दवाओं का छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करते है। फल लगने के बाद रासायनिक दवा का प्रयोग नहीं करते है।

बाड़ी:किसानों की आमदनी का साधन और स्वास्थ्य के लिए पोषण

नारायण लाल, निशा साहू, दिनेश कुमार यादव, एम. वसन्दा कुमार, प्रभात त्रिपाठी, आर. इलनचेलियन एवं आर. के. सिंह

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

पोषण बच्चों और महिलाओं के लिए एक ज्वलंत समस्या है। छत्तीसगढ़ में लगभग सभी ग्रामीण वासियों के पास खेती योग्य जमीन है और धान यहाँ की प्रमुख फसल है। सभी ग्रामीणों को आसानी से धान उपलब्ध हो जाता है क्योंकि शासन गरीब लोगों को एक-दो रुपये में चावल उपलब्ध कराती है लेकिन ग्रामीण फल, सब्जी व दाल से वंचित रहते है जो कि कुपोषण का एक प्रमुख कारण है। ग्रामीण परिवेश में रोज के आहार में दाल, रोटी, फल, सब्जी, दूध व सलाद इत्यादि का समावेश ही परिवार में देखने को मिलता है। धन की अधिकता के कारण उनको सिर्फ ऊर्जा उपलब्ध हो पाती है। इनके लिए आवश्यक है कि आहार में फल, सब्जियाँ आदि की आपूर्ति संतुलित किया जा सके। इसके लिए प्रत्येक परिवार अपनी गृह वाटिका में फल व सब्जी लगाएँ क्योंकि छत्तीसगढ़ में ग्रामीण वासियों के घर के आस-पास जमीन होती है, जो कि बाड़ी कहलाती है छत्तीसगढ़ी मे ये लोग इसे बाड़ी कहकर पुकारते है। बाड़ी में सब्जी के साथ-साथ फल वृक्ष जैसे अमरूद, आम, केला, पपीता, लीची, नीबू इत्यादि लगाएँ। बाड़ी से तात्पर्य घर की चारो ओर उपलब्ध भूमि है जिस पर घर में उपलब्ध साधनों जैसे उपलब्ध भूमि में रसोई, नहाने के पानी व जानवरों को धोने का पानी का समुचित उपयोग करते हुए स्वः एवं परिवार के सदस्यों के देख-रेख व प्रबंधन से स्वास्थ्य वर्धः मन पसंद सब्जी व फलों का उत्पादन कर दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। चार-पांच व्यक्तियों वाले परिवार की पूर्ति के लिए 200 वर्गमीटर भूमि पर्याप्त होगी साथ ही फल की पूर्ति के लिए इतनी भूमि आवश्यक होती है। प्रायः 300 ग्राम सब्जी एवं परिवार को प्रतिदिन आवश्यक होती है, जिसमें 200 ग्राम हरी सब्जी तथा 150 ग्राम जड़ वाली सब्जियों की आवश्यकता होती है। अनुसूचित जन-जातिय परियोजना के अंतर्गत राजनांद गांव जिले में किसानों को फलों व सहजन के पौधे समय पर वितरित किया जाता हैं जिसे किसान बाडी में लगाकर अतिरिक्त आमदनी के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य के लिए उचित पोषण का प्रबंधन कर सकता है। इस परियोजना में किसानों को फल वृक्ष लगाने पर जोर दिया जा रहा है ताकि बाडी से वृक्ष भर सब्जी व फल प्राप्त हो सकें और किसानों का जीवन स्तर सुधर सकें।

बाड़ी में वाटिका के उद्देश्य

1) घर के आस-पास उपलब्ध भूमि का उचित उपयोग करना

2) घर के चारो तरफ साफ-सफाई रखना

3) अपने मन पसंद की सब्जियाँ व फल लगाना

4) रसोई, नहाने एवं जानवरों की धुलाई के पानी का उचित उपयोग करना।

5) वर्ष भर जरूरत के अनुसार सब्जी व फल प्राप्त करना।

6) बाड़ी में कार्य व्यायाम की पूर्ति हो जाती है। जिससे अनेक रोगों से मुक्ति मिलती है।

चित्र 1 : बाड़ी में फलों की विविधता (केला, पपीता, नींबू, सीताफल)

बाड़ी में सब्जी व फल लगाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- अधिकांश भाग में सूर्य का प्रकाश रहना चाहिए
- यदि खुला स्थान हो तो चारो ओर बाड़ लगा दे तथा उस पर बेल वाली सब्जियाँ चढ़ा सकते है।
- फल वृक्ष को बाड़ी में उत्तर पश्चिम की तरफ लगाना चाहिए।
- मध्यम आकार वाले वृक्ष उत्तर की तरफ एवं छोटे आकार वाले वृक्ष पश्चिम की ओर लगाएँ।
- सिचाई की नाली इस प्रकार बनाएँ ताकि उसे रास्ता के रूप में उपयेग कर बाड़ी में कार्य आसानी से कर सके। रास्ते व मेड़ में अधिक भूमि बर्बाद न करें।
- मेड़ों पर मूली-गाजर, चुकन्दर, शल्जम आदि लगाए।
- फलदार वृक्ष के नीचे छाया में हल्दी, अदरक, जिमीकंद आदि लगाएं।
- जिस स्थान पर ज्यादा पानी लगता है वहां पर कोचई, करमत्ता भाजी, केला, गन्ना आदि लगाए।
- बाड़ी के किनारे पर एक मुनगा का पौधा अवश्य लगाए क्योंकि यह बहुत ही लाभदायक है।
- पत्तियाँ वाली सब्जी को एक समूह के रूप में एक जगह लगाएं।
- पूरी भूमि का उपयोग किया जाना चाहिए।
- घर से निकलने वाले पानी का उपयोग बाड़ी में करें।

बाड़ी में सब्जियाँ मौसम के अनुसार लगाएं एवं परिवार की जरूरत के अनुसार विभिन्न प्रकार के फल व सब्जी लगाए ताकि विटामिन व प्रोटीन की पूर्ति हो सके। उचित फसल चक्र अपना कर साल भर बाड़ी से सब्जी उत्पादन करे और परिवार की पूर्ति के पश्चात बचे सब्जी को बेचकर कुछ पैसा भी कमा सके। बाड़ी के लिए खाद-पदार्थ बाड़ी से निकलने वाले सब्जी के अवशेष से ही बनाना चाहिए। ग्रामीण परिवारों में सबके घर गाय व भैंस होती ही है। प्राप्त गोबर से खाद बनाकर उसका उपयोग बाड़ी में सब्जियाँ ऊगाने में किया जाना चाहिए, जिससे कार्बनिक फल व सब्जी प्राप्त हो सके जो कि हानिकारक दवाईयों से बिल्कुल स्वतंत्र हो। इसी प्रकार कीट- व्याधियों से सुरक्षा के लिए नीम की पत्ती व गौमुत्र से जैविक कीटनाशी बनाकर इसका उपयोग बाड़ी में किया जाना चाहिए जिससे रसायन मुक्त फल व सब्जी प्राप्त हो सके। इस प्रकार रसायन मुक्त फल व सब्जी के साथ-साथ विटामिन व प्रोटीन युक्त भोजन मिल सके।

बाड़ी में फल व सब्जी लगाने हेतु विशेष सावधानियाँ :

1) सबसे पहले रजिस्टर में रूप रेखा बनाकर ही कार्यों का निष्पादन करना चाहिए।

2) नालियों व रास्तों का आकार-प्रकार पहले से बना लेना चाहिए।

3) सब्जियों का चुना व इस प्रकार करे ताकि वर्ष भर सब्जी प्राप्त होता रहे।

4) फलदार वृक्ष को बाड़ी के किनारे पर लगाना चाहिए।

5) बेल वाली सब्जियों को किनारे पर बाड़ व दीवार के सहारे लगाना चाहिए।

6) बाड़ी में ही एक कोने पर खाद के गड्ढे बनाना चाहिए।

7) बाड़ी चारो तरफ से घिरा होना चाहिए ताकि फल व सब्जियों को कोई नुकसान न पहुंचा सकें।

8) बाड़ी में कम से कम छाया पड़नी चाहिए।

9) बाड़ी में रोग व कीट प्रबंधन के लिए देशी तरीकों का उपयोग किया जाना चाहिए।

तालिका 1: फलों में पाए जाने वाले पोषक तत्त्व (प्रति 100 ग्राम)

फल	प्रोटीन (ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा)	लोहा (मि.ग्रा)	कैरोटिन (मि.ग्रा)	थायमिन (मि.ग्रा)	विटामिन सी (मि.ग्रा)
आंवला	0.50	50.00	1.20	9.00	0.03	600.00
केला	1.10	8.00	0.70	190.00	0.05	10.00
अंगूर	0.50	20.00	0.50	-	-	1.00
अमरूद	0.10	50.00	1.20	-	0.02	15.00
नींबू	0.50	40.00	0.70	-	-	50.00
आम	1.00	41.00	0.40	200.00	0.10	50.00
पपीता	0.60	17.00	0.50	566.00	0.04	57.00

तालिका 2 : सब्ज़ी में पाए जाने वाले पोषक तत्त्व (प्रति 100 ग्राम)

सब्जी	प्रोटीन (ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा)	लोहा (मि.ग्रा)	कैरोटिन (मि.ग्रा)	थायमिन (मि.ग्रा)	विटामिन सी (मि.ग्रा)
टमाटर	0.90	48.00	0.40	351.00	0.12	27.00
पालक	3.40	380.00	16.20	5862.00	0.26	70.00
मैथी	4.40	395.00	16.50	5862.00	0.26	70.00
पत्तागोभी	1.80	39.00	1.80	1200.00	0.06	124.00
मुग्गापत्ती	1.80	395.00	16.50	2340.00	0.04	52.00
प्याज	1.20	47.00	0.70	-	0.08	11.00
मूली	0.70	35.00	0.40	3.00	0.06	15.00
करेला	1.60	20.00	1.60	126.00	0.07	88.00
बैंगन	1.40	18.00	0.90	74.00	0.04	12.00
फूलगोभी	2.60	30.00	1.50	30.00	0.04	56.00
लौकि	3.50	72.00	2.50	564.00	0.07	14.00
भिन्डी	1.90	66.00	1.50	52.00	0.07	13.00
कद्दू	1.40	10.00	0.70	50.00	0.05	2.00

पालक की वैज्ञानिक खेती

गोविंद षिऊरकर[1], नारायण लाल[2] एवं गरिमा दीवान[3]

[1]भाकृअनुप - भारतीय विद्यापीठ उद्यानविद्या महाविद्यालय, कडेगांव, सांगली, महाराष्ट्र

[2]भाकृअनुप - भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल, मध्यप्रदेश

[3]इंदिरा गांधी कृषि विष्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

पालक को हरी सब्जी के रूप में उगाया जाता हैं। सभी सब्जियों में पालक की सब्जी को सबसे गुणकारी माना जाता हैं। पालक की उत्पत्ति सर्वप्रथम ईरान में हुई थी, तथा इसमें आयरन, प्रोटीन, खनिज-लवण और एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। पालक में अधिक मात्रा में आयरन पाया जाता हैं। जिससे यह शरीर में खून की मात्रा को तेजी से बढ़ाता है। यह बीमारीयों से लड़ने की क्षमता बढ़ाती हैं। यह पाचन के लिए, त्वचा, बाल, आंखों और दिमाग के स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। इससे कैंसर-रोधक और ऐंटीऐजिंग दवाइयां भी बनती हैं। सामान्य तौर पर पालक की सब्जी को पूरे वर्ष खाया जाता है, किन्तु सर्दियों के मौसम में इसका इस्तेमाल अधिक मात्रा में किया जाता हैं। पालक को गर्म जलवायु में बोते समय, हम उन्हें गेहूं, बीन्स याम जैसी कई लंबी फसलों की छाया में भी बो सकते हैं। अपनी किस्मों के आधार पर, पालक 10-21 डिग्री सेल्सियस के बीच के तापमान में उगाया जा सकता है। जब हम पालक को वसंत या पतझड़ में लगाने का फैसला करते हैं, तो हल्की छाया और अच्छी जल निकासी वाली धूप वाली जगह पर पालक लगाना सही होता है। सर्दियों के दौरान, हम अपने पौधों को कोल्ड वेब से बचा सकते हैं या उन्हें घास से ढक सकते हैं। ज्यादातर मामलों में, पालक सीधे खेत में बोया जाता है। किसान सीधे जमीन पर पंक्तियों में पालक के बीज (ज्यादातर संकर) लगा सकते हैं। पौधों को बढ़ने के लिए बीच में पर्याप्त जगह की आवश्यकता होती है। सीधे बीज बोने पर, हम 2.5-3 सेमी की गहराई में पंक्तियों में बीज लगाते हैं। निरंतर उत्पादन के लिए, हम हर 10-15 दिनों में बीज बो सकते हैं। यह एक ऐसी सब्जी है, जिसे कम समय में और कम खर्च में उगाकर अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। यह कम समय में अधिक पैदावार देने वाली फसल है। भारत में इसे अनेक राज्यों में उगाया जाता हैं। जैसे आंध्रप्रदेश, तेलांगना, केरल, तमिलनाडू, उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और गुजरात आदि पालक उत्पादक के राज्य हैं।

अच्छा विकास पाने के लिए और अधिक पैदावार बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रख सकते हैं।

1. एक एकड़ के लिए 8 से 10 किलो बीज पर्याप्त होता है।
2. प्रतिकिलो बीज को 2 ग्राम कार्बेंडाजिम/2 ग्राम थिरम से उपचारित करें।
3. बुआई करते समय पौधे से पौधे की दूरी 1 से 1.5 सेंटीमीटर और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 15 से 20 सेंटीमीटर रखें।
4. बीज को 2.5 से 3 सेंटीमीटर की गहराई में बोएं।
5. रोपाई करने के तुरंत बाद सिंचाई करें।
6. इसके बाद 5 से 7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें।

पालक की खेती कब करें ?

सबसे कम समय तथा सबसे कम पानी में तैयार होने वाली पालक की खेती पूरे वर्ष किसी भी महीने में बिना किसी परेशानी के की जा सकती हैं। बरसात और गर्मी में पालक की खेती से बहुत अच्छा पैसा कमाया जा सकता है क्योंकि गर्मियों में पत्तेदार पालक का सेवन स्वास्थ के लिए बहुत ही लाभदायक होता हैं। तथा बरसात में पालक की खेती बहुत कम होती है क्योंकि पालक बारिश को ज्यादा सहन नहीं कर पाती है जिससे इनकी खेती बहुत कम होती है इसलिए वर्षा के समय इनकी किमत बहुत महंगी हो जाती हैं।

मिट्टी: पालक को मिट्टी की कई किस्में जो अच्छे जल निकास वाली होती हैं, में उगाया जा सकता है पर यह रेतीली चिकनी और जलोढ़ मिट्टी में अच्छा परिणाम देती है। जल जमाव वाली मिट्टी में पालक की खेती करने से बचाव करें। इसके लिए मिट्टी का पीएच 6 से 7 होना चाहिए। पालक की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है, लेकिन जैविक पदार्थों से भरपूर मिट्टी में यह ज्यादा अच्छे से विकसित होगी।

भूमि कि तैयारी: अच्छी पैदावार को प्राप्त करने के लिए खेत की मिट्टी का भुरभुरा होना आवश्यक होता हैं। इसके लिए आरम्भ में ही खेत की पहली गहरी जुताई कर पुराने अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। जुताई के पश्चात खेत को कुछ समय के लिए ऐसे ही खुला छोड़ दे जिससे खेत की मिट्टी में अच्छी तरह से धूप लग जाए। पालक के खेत को समतल बनाने केलिए भूमि में पाटा लगाकर उसे समतल बना देना चाहिए। इससे खेत में जलभराव की समस्या नहीं होती है। खरपतवारों के डंठल और अन्य अवांछित वस्तुओं को निकाल देते है। चूंकि पालक की फसल की कटाई को कई बार किया जाता है, इसलिए इसके पौधों को अधिक उवर्रक की आवश्यकता होती है। बुआई के समय 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फॉस्फोरस और 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर खेत में मिला देनी चाहिए।

आवश्यक जलवायु: भारत की जलवायु पालक की खेती के लिये बहुत ही उपयुक्त है। वैसे तो इसकी खेती पूरे साल की जा सकती है, लेकिन इसकी खेती करने का सही समय फरवरी से मार्च और नवंबर से दिसंबर का महीना होता है। पालक की खेती के लिए सर्दियों के मौसम को उपयुक्त माना जाता है, सर्दियों के मौसम में गिरने वाले पाले को इसके पौधे आसानी से सहन कर लेते है, तथा अच्छे से विकास भी करते हैं। इसके पौधे सामान्य तापमान में अच्छे से विकास करते है, तथा पौधों को अंकुरण के लिए 20 डिग्री तापमान की आवश्यकता होती है। यह अधिकतम 30 डिग्री तापमान तथा न्यूनतम 5 डिग्री तापमान को आसानी से सहन कर सकते हैं। ज्यादा गर्म मौसम में पालक के पौधे बीज देना शुरू कर देते है। ऐसी स्थिति में, पौधे आनुवंशिक रूप से अपने संसाधनों को पत्तियों के विकास के बजाय बीज के उत्पादन में लगाने लगते हैं। इसलिए, इस उत्पाद को नहीं बेचा जा सकता है।

पालक की उन्नत किस्में- पालक की कई अच्छी किस्में विकसित की गई हैं। इसमें पूसा हरित, जोबनेर ग्रीन, ऑलग्रीन, हिसार सलेक्शन-23, पूसा ज्योति, पंजाब सलेक्शन, पंजाब ग्रीन प्रमुख हैं।

पूसा हरित: पालक की इस किस्म की पत्तियां गहरे हरे रंग की होती हैं। पत्ते बड़े और चमकीले होते हैं। इसे पहाड़ी इलाकों में सालभर उगाया जा सकता है। पालक की यह किस्म अधिक उपज देने के लिए जानी जाती है। एक बार बुआई करने पर इस किस्म को 6-7 बार कटाई की जा सकती है। इस किस्म की पालक की पैदावार प्रति एकड़ 8-10 टन हो जाती है।

पूसा ज्योति: पूसा ज्योति किस्म का पौधा 45 दिन बाद पैदावार देने के लिए तैयार हो जाता है द्य पालक की इस किस्म में पौधों पर निकलने वाली पत्तिया लम्बी, चौड़ी तथा गहरे रंग की होती हैं। इसके पौधों के तैयार हो जाने पर 7 से 10 बार कटाई की जा सकती है, यह पालक की अधिक पैदावार देने वाली किस्म है, जो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 45 टन की पैदावार देती हैं। इन्हे अगेती और पछेती दोनों के उत्पादन के लिए उगाया जाता है।

जोबनेर ग्रीन: इस किस्म की पालक को उगाने के लिए हल्की क्षारीय भूमि की आवश्यकता होती हैं। पालक

की यह किस्म 40 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाती हैं।इसके पत्ते हरे, बड़े और मोटे होते हैं। इस किस्म की भी आप एक फसल में 5-6 बार कटाई कर सकते हैं। इसके पत्ते काफी मुलायम होते हैं। यह किस्म बुआई करने के 40 दिन के बाद पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है। यह संकर किस्म प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 30 टन का उत्पादन देती हैं।

ऑलग्रीनः पालक की यह किस्म सर्दियों के मौसम में उगाई जाती है इसके पत्ते हरे और काफी मुलायम होते हैं। इसकी 6 से 7 कटाई आसानी से की जा सकती है। यह किस्म बुआई के 35 दिन बाद ही कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इसकी पैदावार 10 से 12 टन प्रति एकड़ होती है।

अर्का अनुपमाः- पालक की यह किस्म 40 दिन बाद पैदावार देने के लिए तैयार हो जाती हैं। इस किस्म में लगने वाले पौधों की पत्तिया देखने में गहरे हरे रंग की और आकार में बड़ी व चौड़ी होती हैं। पालक की यह किस्म आईआईएचआर-10 औरआईआईएचआर-8 का संकरण कर तैयार की गई हैं। जिसमे प्रति हेक्टेयर के हिसाब से 10 टन की पैदावर प्राप्त हो जाती हैं।

इसके अलावा भी पालक की कई संकर किस्मो को तैयार किया गया है, जिन्हे अलग-अलग स्थानों पर देर तक कटाई और अधिक पैदावार के लिए उगाया जा रहा हैं। इसमें आस्ट्रेलियन, बनर्जी जाइंट, वर्जीनिया सेवॉय, एलएस 2 एफ 1 संकर, लागस्टैंडिंग, लालपत्ती पालक, अर्लीस्मूथ लीफ, एसएक्सएस संख्या 7, पूसा भारती, पालक नं. 51-16, हिसार सिलेक्शन 23, हाइब्रिड एफ 1, पंजाब सिलेक्शन, पंजाब ग्रीन जैसी अनेको किस्में मौजूद हैं।

बुवाई का समय :- पालक के बीजो को भारत के सभी क्षेत्रों में पूरे वर्ष ही लगाया जाता है, किन्तु इसकी रोपाई के लिए सितम्बर और नवंबर के माह को उपयुक्त माना जाता हैं। जुलाई महीने के दौरान बारिश का मौसम होता है, तब इसके पौधे आसानी से उग आते हैं। पालक के बीजो को खेत में रोपाई करने से पहले उन्हें बाविस्टिन या कैप्टान दवा की उचित मात्रा से उपचारित कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त गोमूत्र में 2 से 3 घंटे तक बीजो को भिगोकर भी उपचारित किया जा सकता हैं।

बुवाई की विधिः- बुवाई से पूर्व क्यारी में पानी भर के पलेवा कर देते है और जब क्यारी में खूब नमी रहती है लेकिन पैर नही धसता है, पालक की पंक्ति में बुवाई करने के लिए पंक्तियों व पौधों की आपस में दुरी 30 सेन्टीमीटर और 3 सेन्टीमीटर रखना चाहिए। पालक के बीज को 2 से 3 सेन्टी मीटर की गहराई पर बोना चाहिए, इससे अधिक गहरी बुवाई नही करनी चाहिए।

बीज की मात्राः- अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए सही व ऊन्नत शील बीज का चयन करना चाहिए,जिसे विश्वसनीय दुकान से पालक बीज को प्राप्त करना चाहिए वैसे एक हेक्टेयर में 20 से 25 किलोग्राम बीज पर्याप्त होता हैं।

पोषक तत्व (उर्वरक की मात्रा):- 20-25 किलोग्राम नत्रजन, 60-80 किलोग्राम स्फुर तथा 60 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर का उपयोग पालक की फसल में करना चाहिए।

पालक को औसत मिट्टी में भी उगा सकते है, लेकिन पोषक-तत्वों से भरपूर मिट्टी में यह ज्यादा फलता-फूलता है। बीज बोने से कुछ दिन पहले मिट्टी में कम्पोस्ट और फॉस्फोरस की खाद का मिश्रण डालते हैं। फॉस्फोरस की गंभीर कमियों के मामले में, बीज बोने से कुछ दिन पहले प्रति हेक्टेयर 50 किलोग्राम की दर से फॉस्फोरस डाल सकते हैं बहुत सारे किसान फर्टिंगेशन का उपयोग करते हैं, अर्थात वो सिंचाई प्रणाली में पानी में घुलनशील उर्वरकों का समावेश कर देते हैं। इस तरह, वो पैदावार को बढ़ावा देते हैं और पौधों में एक साथ खाद और पानी देकर समय भी बचा सकते हैं।

सिंचाईः यदि बुवाई के समय क्यारी में नमी की कमी हो तो बुवाई के तुरंत बाद एक हल्की सिंचाई कर दे। पालक को अधिक पानी कि आवश्यकता होती है। पालक के पौधे की जड़ें बहुत ज्यादा नीचे तक नहीं जाती

हैं। इसीलिए, अच्छी उपज पाने के लिए, इस पौधें को कम मात्रा में ज्यादा बार सिंचाई पसंद होती है। पालक के बीजो की सिंचाई को आरम्भ में 5 से 7 दिन के अंतराल में करते रहना चाहिए, इससे बीजो का अंकुरण अच्छे से होता हैं। गर्मियों के मौसम में इन्हे सप्ताह में दो बार तथा सर्दियों के मौसम में इन्हे 10 से 12 दिन के अंतराल में सिंचाई की आवश्यकता होती हैं। इसके अलावा वर्षा ऋतु के मौसम में इन्हे जरूरत पड़ने पर ही पानी दे। परन्तु यदि जुलाई में पालक की खेती करते हैं तो अगर बारिश समय पर होती है तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। दुनिया के आधे से ज्यादा पालक उत्पादन को स्प्रिंकलर के माध्यम से सींचा जाता है। हालाँकि, कुछ मामलों में, ज्यादा स्प्रिंकलर सिंचाई से पत्तियों पर धब्बों का रोग उत्पन्न हो सकता है।

पालक के बीजो की सिंचाई को आरम्भ में 5 से 7 दिन के अंतराल में करते रहना चाहिए, इससे बीजो का अंकुरण अच्छे से होता हैं। गर्मियों के मौसम में इन्हे सप्ताह में दो बार तथा सर्दियों के मौसम में इन्हे 10 से 12 दिन के अंतराल में सिंचाई की आवश्यकता होती हैं। इसके अलावा वर्षा ऋतु के मौसम में इन्हे जरूरत पड़ने पर ही पानी दे।

खरपतवार नियंत्रणः पालक की खेती को खरपतवारों से 60 प्रतिशत तक हानि होती है। इसलिए पालक से अच्छी आमदनी कमाने के लिए इन्हें खरपतवारों से बचाना चाहिए। खरपतवार से इसके पौधों में कीट रोग लगने का खतरा बढ़ जाता हैं। जिससे इसकी पैदावार प्रभावित होती हैं। पालक की फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए प्राकृतिक या रासायनिक विधि का इस्तेमाल कर सकते हैं। रासायनिक विधि द्वारा खरपतवार पर नियंत्रण पाने के लिए पेंडीमेथिलीन की उचित मात्रा का छिड़काव खेत में बीज रोपाई के तुरंत बाद कर देना चाहिए ,परन्तु इस बात का ध्यान रहे की पेंडीमेथिलिन का स्प्रे करते समय खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चाहिए। लेकिन यदि खेत में पर्याप्त नमीन हो तो दवा के छिड़काव के बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिए। प्राकृतिक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण के लिए पौधों की निराई-गुड़ाई की जातीहैं। पालक के पौधों की पहली गुड़ाई को बीज रोपाई के 15 बाद किया जाना चाहिए। इसके बाद समय-समय पर खेत में पौधो के बीच में खरपतवार दिखाई देने पर उनकी गुड़ाई कर दे।

कीट एवं रोग नियंत्रणः-

चेपा कीट रोगः-

इस किस्म का कीट अक्सर गर्मियों के मौसम में देखने को मिलताहैं। चेपा कीट पौधों की पत्तियों का रस चूसकर उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर देता हैं। इस रोग से प्रभावित पत्तिया पीले रंग की दिखाई देने लगती है, और कुछ ही समय में टूटकर गिर जाती हैं। यह कीट पैदावार को अधिक प्रभावित करता हैं। डायमेथोएट की 2 मि.ली. दवा को प्रतिलीटर पानी की घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट से बचाव किया जा सकता हैं।

लीफमाइनर कीटः-

लीफमाइनर कीट को पर्ण सुरंगक कीट के नाम से भी पुकारते हैं। यह कीट पौधों की पत्तियों को अधिक हानि पहुँचता हैं। इसकीट से प्रभावित होने पर पौधे की पत्तियों पर पारदर्शी नालीनुमा सफ़ेद और भूरे रंग की धारिया दिखाई देने लगती हैं। इससे पौधोंकी पत्तियों को पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व नहीं प्राप्त हो पाते है, और पौधे की वृद्धि पूरी तरह से रुक जाती हैं। जिससे किसान को पैदावार भी कम प्राप्त होती हैं। डायमेथोएट या साइनट्रानिलिप्रोल (2 मि.ली./लीटर) की उचित मात्रा का छिड़काव करने से इस रोग की रोकथाम की जा सकती हैं।

बालदार सुंडी कीटः-

पालक के पौधे में लगने वाला यह कीट बारिश के मौसम में आक्रमण करता है। बालदार कीट की सुंडी लाल, पीले और काले रंग में दिखाई देती हैं। यह कीट पौधों की पत्तियों को खाकर उन्हें नष्ट कर देता हैं। जिससे पालक की पैदावार और गुणवत्ता प्रभावित होती हैं। इस तरह के कीट से बचाव के लिए पालक के पौधों पर नीम के तेल या फिर सर्फ़ के घोल का उचित मात्रा में छिड़काव किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त साइपरमेथिन या डेल्टामेथिन (1 मि.ली./लीटर पानी) कीटनाशक की उचित मात्रा का पौधों पर छिड़काव कर रासायनिक तरीके से इसकीट की रोकथाम की जा सकती हैं।

रोकथामः-

1. उपचारित बीज की बुआई करें।
2. फसल में समय से कीटनाशक का छिड़काव करें।
3. कीट लगने पर 50 मिली क्लोरेट्रानिलिप्रोएल 18.5 प्रतिशत एस सीया 80 ग्राम इमामेक्टिन बेंजोएट 5 प्रतिशत को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ खेत में छिड़काव करें।
4. इससे फसल को बचाने के लिए प्रोफेक्स कीटनाशक का 25 ए एस प्रति 15 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती धब्बा रोगः- यह एक फफूंद जनित रोग होता है, जो पौधों की पत्तियों पर धब्बे के रूप में दिखाई देता हैं। पत्ती धब्बा रोग पौधों की पत्तियों पर आक्रमण कर उन्हें पूरी तरह से नष्ट कर देता है। इस रोग से बचाव के लिए बलाईटाक्स के घोल का छिड़काव पौधों की पत्तियों पर करे।

रोकथामः-

- बुआई से पहले ही बीज को उपचारित कर लें।
- रोग लगने पर नियंत्रण के लिए मेंकॉजैब 75 डब्ल्यू पी 400 ग्राम प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

गलन रोग- अगर आप बरसात में पालक की खेती करते हैं तो इन दिनों बारिश के कारण पालक की पत्तियां गलने का रोग लगता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है की पालक की खेती अधिक पानी को नहीं सहन कर पाती है। ऐसे में किसान भाइयों को चाहिए की यदि बरसात में पालक की खेती करने जा रहे हैं तो, किसी ऊँचे जल निकास वाली भूमि का चयन करना चाहिए तथा अगर गलन रोग दिखाई दे तब एजोक्सीस्ट्रोबिन या कार्बोंडाजीम (1 ग्राम/लीटर पानी) फफूंद नाशक रसायन का स्प्रे करना चाहिए।

कटाई एवं उपजः-

- बुआई के 3-4 सप्ताह बाद पालक के पौंधे की पत्तियों की लम्बाई 15 से 30 सेमी लम्बी हो जाए तब पहली बार कटाई के लिए तैयार हो जाते है। पत्तियां जब पूरी तरह से विकसित हो जाये लेकिन हरी कोमल और रसीली अवस्था में हो तो जमीन कि सतह से 5 से 6 से.मी. ऊपर से ही पत्तियों को चाकू या हसिया से काट लेते है इसके बाद अगली कटाई हर 15 से 20 दिन बाद करते है इस प्रकार से पालक की एक फसल से लगभग 5 से 6 बार कटाई की जा सकती है कटाई के बाद क्यारी का हल्की सिंचाई कर देते है इससे पौधों कि बढवार तेज होती है। पालक की चार से पांच कटाई पर 15-20 टन की पैदावार प्राप्त हो जाती है, वही 10 क्विंटल तक इसके दाने प्राप्त हो जाते है। पालक का बाजारी भाव 5 से 10 रूपए किलो होता है। जिससे किसान भाई इसकी फसल से डेढ़ से दो लाख तक की कमाई आसानी से कर सकते है।

फॉस्फोरस उपयोग दक्षता बढ़ाने की रणनीतियाँ

धीरज कुमार, निशांत कुमार सिन्हा, जितेंद्र कुमार, आर एच वंजारी,
सीमा भारद्वाज, राहुल मिश्रा, आशा साहू एवं अनिल नागवंशी

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल

अगली सदी के मध्य तक दुनिया की आबादी 6 बिलियन से दोगुनी होकर 12 बिलियन हो जाने की उम्मीद है। इसलिए, अगर कृषि को खाद्यान्न की मांग को पूरा करना है, तो मिट्टी के वातावरण का विकास जो अधिक फसल उपज प्रदर्शित करता है, अनिवार्य है। मिट्टी में आवश्यक पौधों के पोषक तत्वों की अपर्याप्त आपूर्ति उत्पादन की दिशा में वृद्धि-सीमित कारक है। एक पौधे द्वारा आवश्यक सभी तत्वों में से, फॉस्फोरस फसल उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में से एक है, और टिकाऊ फसल उत्पादन के लिए फॉस्फोरस उर्वरक के कुशल उपयोग पर जोर दिया जा रहा है। फॉस्फेटिक उर्वरकों की दक्षता मुख्य रूप से उर्वरकों के बजाय उत्पादों से फॉस्फोरस की रिहाई पर निर्भर करती है। फॉस्फोरस निर्धारण को प्रतिबंधित करने के लिए मिट्टी के साथ उर्वरकों का न्यूनतम संपर्क रखने के तरीके अपनाए जाने चाहिए। साथ ही, फसलों का ऐसा चक्र होना चाहिए जिससे अधिकतम फॉस्फोरस का सीधे और अवशिष्ट प्रभाव के रूप में उपयोग किया जा सके। फसलों द्वारा उर्वरक फॉस्फोरस के उपयोग की दक्षता उस वर्ष 10 से 30% तक होती है जब इसे लगाया जाता है। शेष 70 से 90% मिट्टी के फॉस्फोरस पूल का हिस्सा बन जाता है जिसे अगले महीनों और वर्षों में फसल में छोड़ा जाता है। जबकि यह पूल भविष्य की फसल उत्पादन में योगदान देता है, आवेदन के वर्ष में फसल की वसूली में सुधार करके उर्वरक की दक्षता बढ़ाने से संभावित रूप से फसल की पैदावार और आर्थिक लाभ में सुधार हो सकता है।

फास्फोरस उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण।

जड़ की सतह / मिट्टी के संपर्क क्षेत्र को बढ़ाना:

यह जड़ की आकृति विज्ञान को संशोधित करके प्राप्त किया जा सकता है। जड़ बायोमास के एक स्थिर स्तर के लिए, उच्च विशिष्ट जड़ लंबाई वाली जड़ें (यानी छोटे व्यास वाली जड़ें) एक बड़े सतह क्षेत्र को कवर कर सकती हैं। उसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दूसरा तरीका बाल जड़ विकास को बढ़ाना है। जड़ की बारीकता या शाखाएँ गेहूं में फॉस्फोरस अवशोषण दक्षता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। यह मार्ग आशाजनक लगता है क्योंकि गेहूं में इस विशेषता के लिए बड़ी आनुवंशिक परिवर्तनशीलता के सबूत हैं। हालाँकि, वर्तमान में उपयोग में आने वाली समय लेने वाली और श्रम-गहन पद्धतियाँ प्रजनन कार्यक्रमों में इसके अनुप्रयोग को सीमित करती हैं जहाँ बड़ी संख्या में जीनोटाइप की जाँच करने की आवश्यकता होती है।

भावी जड़ सतह क्षेत्र में वृद्धि (VAM, वेसिकुलर आर्बस्कुलर माइकोराइजा का उपयोग):

आर्बुस्कुलर माइकोराइजल कवक (**AMF**) के साथ जड़ सहजीवन प्रभावी जड़ क्षेत्र को बढ़ाकर फॉस्फोरस अवशोषण को बढ़ाने के लिए दिखाया गया है। **AMF** संक्रमण फॉस्फोरस प्रवाह (प्रति इकाई जड़ लंबाई में फॉस्फोरस अवशोषण) को बेहतर बनाता है। माइसेलिया अधिक गहराई तक बड़ी मात्रा में खोज करते हैं, कम उपजाऊ मिट्टी से फास्फोरस को अवशोषित करने के लिए भी उपनिवेश बनाते हैं। दूसरी ओर, वेसिकुलर-आर्बस्कुलर माइकोराइजा (**VAM**) से जुड़ने के लिए गेहूं की किस्मों में मौजूद आनुवंशिक विविधता पर चर्चा करने वाली उपलब्ध जानकारी सुसंगत नहीं है ।

राइजोस्फीयर संशोधन के माध्यम से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाना:

प्रोटॉन से लेकर जटिल कार्बनिक अणुओं तक की जड़ों से निकलने वाले स्राव पोषक तत्वों की उपलब्धता

और अवशोषण को प्रभावित कर सकते हैं। फॉस्फेटेस को खराब रूप से उपलब्ध कार्बनिक फॉस्फोरस को बदलने के लिए रिपोर्ट किया गया है, जो आमतौर पर पौधे की कुल फास्फोरस आपूर्ति का 40-50% होता है, पौधे को उपलब्ध अकार्बनिक रूपों में जड़ की सतह पर उत्सर्जित या बंधे हुए रूट फॉस्फेटेस में जीनोटाइपिक अंतर होते हैं।

उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए फास्फोरस उर्वरकों को कोटिंग करना:

पतली बहुलक कोटिंग्स के विकास ने उर्वरक कणों को कोटिंग करने के अवसर में सुधार किया है और नियंत्रित-रिलीज़ उत्पाद से पोषक तत्व कब उपलब्ध होंगे, इसकी भविष्यवाणी को बढ़ाया है। लेपित फॉस्फेट उत्पाद के काम करने के लिए, इसे मिट्टी द्वारा अल्पकालिक फास्फोरस निर्धारण को कम करना चाहिए। फास्फोरस उर्वरक से आने वाले फास्फोरस के अनुपात को कोटिंग के साथ सुधारा जा सकता है, जिससे मिट्टी की फास्फोरस आपूर्ति पर पौधे की निर्भरता कम हो जाती है।

रासायनिक और जैविक फास्फोरस स्रोतों से सीमित सिंचाई का उपज पहलू पर प्रभाव:

विशेष रूप से शुष्क क्षेत्र में, पानी की कमी एक बड़ी बाधा है। इसलिए, यहाँ उन रणनीतियों को अपनाया जाना चाहिए जिसमें फास्फोरस उर्वरकों के कम उपयोग के साथ पानी का सीमित उपयोग हो ताकि अधिकतम फास्फोरस उपयोग दक्षता प्राप्त हो सके। राइजोस्फीयर से फास्फोरस अवशोषण पर एक सहक्रियात्मक प्रभाव होना चाहिए जो मिट्टी के पानी में खनिज तत्वों की अधिक चिपचिपाहट के हानिकारक प्रभावों को कम करके नमी तनाव की स्थिति में मिट्टी के बफर इंडेक्स को बढ़ाता है।

मूंगफली में विभिन्न उपज विशेषताओं पर फास्फोरस उर्वरकों के साथ बीज के आकार का प्रभाव:

1. **पत्ती क्षेत्र सूचकांक:** मूंगफली का पत्ती क्षेत्र सूचकांक (**LAI**) बीज के आकार और विकास चरणों के बीच बहुत भिन्न होता है। यह पौधे की उम्र पर भी निर्भर करेगा। बड़े बीजों ने लगभग पूरे विकास काल में उच्च **LAI** दिखाया, उसके बाद मध्यम बीज आकार का। बड़े और मध्यम बीजों के **LAI** में प्रगतिशील वृद्धि पत्ती क्षेत्र में वृद्धि के कारण हो सकती है। फास्फोरस उर्वरक के आवेदन के बावजूद, परिपक्वता पर **LAI** कम हो गया। बीज के आकार और फास्फोरस उर्वरक के आवेदन दोनों ने **LAI** वक्र के बीज पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला।

2. **जड़ की लम्बाई का घनत्व:** बड़े और मध्यम आकार के बीजों से उगाए गए पौधों ने छोटे और बड़े आकार के बीजों की तुलना में काफी अधिक आर.एल.डी. का उत्पादन किया।

नैनो प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग: नैनो पैमाने पर परमाणुओं और अणुओं में हेरफेर करने वाली नैनो प्रौद्योगिकी आधुनिक विज्ञान में अनुसंधान के अग्रणी क्षेत्रों में से एक है। नैनो कण, नैनो प्रौद्योगिकी में कृषि फसल उत्पादकता बढ़ाने की बहुत संभावना है। भारत के शुष्क क्षेत्र कठोर जलवायु परिस्थितियों के लिए जाने जाते हैं। उर्वरक उपयोग दक्षता को अधिकतम करना विशेष रूप से फास्फोरस (पी) और उपजाऊ मिट्टी और नमी के नुकसान को कम करना कुछ प्रमुख शोध योग्य क्षेत्र हैं जिन्हें संसाधन विहीन किसानों को अधिकतम लाभ पहुंचाने के लिए प्राथमिकता पर संबोधित करने की आवश्यकता है। अधिकतम फास्फोरस उपयोग दक्षता (**PUE**) प्राप्त करने के लिए जैविक/गैर-जैविक तरीकों के माध्यम से **P, Zn, Fe** और **Mg** के नैनो कणों का संश्लेषण और मिट्टी के एकत्रीकरण और नमी बनाए रखने को बढ़ावा देने के लिए एक्सो-पॉलीसेकेराइड उत्पादन को बढ़ाने के लिए सूक्ष्मजीवों को उत्तेजित करने के लिए उनका उपयोग करना। उच्च **PUE** प्राप्त करने के लिए नैनो फास्फोरस -उर्वरक विकसित करें। लंबे समय में, यह उर्वरक आवेदन की खुराक को कम करने और किसानों की इनपुट लागत को बचाने में मदद करेगा। नैनो-कणों के उपयोग के माध्यम से माइक्रोबियल एक्सो-पॉलीसेकेराइड्स उत्पादन को बढ़ाना और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में मृदा क्षरण को कम करने और नमी

संरक्षण के लिए मृदा कंडीशनर विकसित करना भी संभव होगा।

उपयोग दक्षता पर उर्वरित फास्फोरस का प्रभाव: उर्वरीकरण (सिंचाई के पानी के माध्यम से उर्वरकों का अनुप्रयोग) गहन टिकाऊ कृषि के लिए सबसे अच्छा उर्वरक प्रबंधन दृष्टिकोण प्रतीत होता है, क्योंकि इसका उपयोग उर्वरकों की दक्षता बढ़ाने, उपज में वृद्धि, पर्यावरण की रक्षा और सिंचित कृषि को बनाए रखने के लिए किया जाता है। उर्वरीकरण का सकारात्मक प्रभाव निषेचन के साथ-साथ उचित समय पर मिट्टी में इष्टतम नमी के कारण भी हो सकता है, जो फसलों द्वारा लागू फास्फोरस के अधिकतम उपयोग की सुविधा प्रदान करता है। फास्फोरस के अवशोषण में वृद्धि काफी अधिक होती है, बशर्ते फास्फोरस को उर्वरीकरण के रूप में लागू किया जाए। उर्वरित डीएपी और एसएसपी में उनके छिड़काव अनुप्रयोग की तुलना में फास्फोरस उर्वरक दक्षता अधिक थी। फास्फोरस के कम अनुप्रयोग दर पर उर्वरीकरण विधि अपेक्षाकृत अधिक कुशल साबित हो सकती है।

फास्फोरस उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए बेहतर जीनोटाइप की स्क्रीनिंग:

यदि संभव हो तो, फास्फोरस उपयोग दक्षता के लिए स्क्रीनिंग सबसे पहले **Al** या **Mn** विषाक्तता रहित मिट्टी में की जानी चाहिए। एक बार जब खेत में फास्फोरस उपयोग दक्षता के लिए उत्कृष्ट सामग्रियों का चयन कर लिया जाता है, तो उन्हें खेत में या हाइड्रोपोनिक्स में **Al** और या **Mn** विषाक्तता के लिए जांचा जा सकता है। फास्फोरस उपयोग दक्षता (पौधे में प्रति इकाई फास्फोरस की अनाज उपज) पौधे की आंतरिक फास्फोरस आवश्यकता पर निर्भर करती है। बढ़ी हुई फसल सूचकांक, फास्फोरस फसल सूचकांक और अनाज में कम फास्फोरस सांद्रता फास्फोरस उपयोग दक्षता में सुधार कर सकती है ।

सर्वोत्तम प्रबंधन प्रथाओं (बीएमपी) की अवधारणा:

कृषि सर्वोत्तम प्रबंधन प्रथाओं (बीएमपी) की अवधारणा कोई नई नहीं है। लगभग 20 वर्ष पहले पहली बार प्रस्तुत किए गए पोटाश एवं फॉस्फेट संस्थान (पीपीआई) के वैज्ञानिकों ने बीएमपी को उन पद्धतियों के रूप में परिभाषित किया था, जो अनुसंधान में सिद्ध हो चुकी हैं और किसानों द्वारा क्रियान्वयन के माध्यम से परखी गई हैं, ताकि इष्टतम उत्पादन क्षमता, इनपुट दक्षता और पर्यावरण संरक्षण प्राप्त हो सके ।

पोषक तत्व उपयोग दक्षता पर फास्फोरस के प्रयोग का प्रभाव:

पोषक तत्व उपयोग दक्षता हमेशा से ही मुख्य चिंता का विषय रही है, क्योंकि लक्षित उत्पादन प्राप्त करने के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता कम होती जा रही है, प्रति इकाई निवेशित राशि पर अधिक रिटर्न मिलता है और पर्यावरण प्रदूषण का जोखिम कम होता है। किसी पोषक तत्व की इनपुट उपयोग दक्षता मिट्टी में अन्य पोषक तत्वों की पर्याप्तता पर निर्भर करती है। फास्फोरस की उपयोग दक्षता नाइट्रोजन के प्रयोग पर निर्भर करती है और इसके विपरीत। इसका अर्थ है कि पौधे अधिकतम फास्फोरस उपयोग दक्षता तब व्यक्त कर सकते हैं जब मिट्टी में अन्य सभी पोषक तत्व मौजूद हों। दीर्घकालिक अध्ययन के आधार पर गणना की गई पोषक तत्व उपयोग दक्षता पर डेटा के अवलोकन से पता चला कि जैसे ही हम नाइट्रोजन को अन्य पोषक तत्वों (फास्फोरस और पोटेशियम) और जैविक खाद के साथ एकीकृत करते हैं, फसल और मिट्टी की परवाह किए बिना फास्फोरस की उपयोग दक्षता में वृद्धि दर्ज की जाती है। उदाहरण के लिए, लुधियाना में इनसेप्टिसोल्स में, 100% एनपी में दर्ज मक्का में फास्फोरस उपयोग दक्षता 20.3% थी जो नाइट्रोजन, पोटेशियम और एफवाईएम की उपस्थिति में क्रमशः 22.4, 26.3% तक बढ़ गई (तालिका 1)। धान और गेहूं की फसल अनुक्रम में पंतनगर के मोलिसोल्स में भी इसी तरह की प्रवृत्ति देखी गई। इसी तरह, नाइट्रोजन और पोटेशियम के योग से फास्फोरस उपयोग दक्षता में वृद्धि हुई है। तालिका 1 में प्रस्तुत आंकड़ों से संकेत मिलता है कि एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के परिणामस्वरूप सभी स्थानों और सभी फसल प्रणालियों में फास्फोरस उपयोग दक्षता में वृद्धि हुई है।

तालिका 1. फसलों में नाइट्रोजन उपयोग दक्षता पर फास्फोरस और पोटेशियम के दीर्घकालिक प्रयोग का प्रभाव।

स्थान	मिट्टी का प्रकार	फसल	फास्फोरस उपयोग दक्षता (%)		
			100% एनपी	100% एनपीके	100% एनपीके + गोबर की खाद
लुधियाना	इनसेप्टिसोल्स	मक्का	20.3	22.4	26.3
पालमपुर	अल्फिसोल्स	मक्का	21.8	27.6	31.1
पंतनगर	मोलिसोल्स	चावल	22.2	24.3	33.0
लुधियाना	इनसेप्टिसोल्स	गेहूं	20.6	30.7	34.8
पालमपुर	अल्फिसोल्स	गेहूं	10.7	18.2	24.6
पंतनगर	मोलिसोल्स	गेहूं	14.2	15.4	23.3

उर्वरक प्रबंधन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत:

1. सही उत्पाद: उर्वरक स्रोत और उत्पाद को फसल की ज़रूरत और मिट्टी के गुणों से मिलाएं। पोषक तत्वों की परस्पर क्रिया के बारे में जागरूक रहें और मिट्टी के विश्लेषण और फसल की ज़रूरतों के अनुसार नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम और अन्य पोषक तत्वों को संतुलित करें। संतुलित उर्वरक पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाने की कुंजी है।

2. सही दर: फसल की ज़रूरतों के हिसाब से उर्वरक की मात्रा का मिलान करें। बहुत ज़्यादा उर्वरक से पर्यावरण को नुकसान और अन्य नुकसान होता है और बहुत कम उर्वरक से उपज और फसल की गुणवत्ता कम होती है और मिट्टी की रक्षा और निर्माण के लिए कम अवशेष बचते हैं। यथार्थवादी उपज लक्ष्य, मिट्टी परीक्षण, चूक भूखंड, फसल पोषक तत्व बजट, ऊतक परीक्षण, संयंत्र विश्लेषण, एप्लीकेटर अंशांकन, परिवर्तनीय दर प्रौद्योगिकी, फसल स्काउटिंग, रिकॉर्ड रखना और पोषक तत्व प्रबंधन योजना BMP हैं जो उर्वरक खुराक की सही दर निर्धारित करने में मदद करेंगे।

3. सही समय: पोषक तत्वों को तब उपलब्ध कराएं जब फसल को उनकी ज़रूरत हो। पोषक तत्वों का सबसे अधिक कुशलता से उपयोग तब किया जाता है, जब उनकी उपलब्धता फसल की मांग के साथ तालमेल बिठाती है। अनुप्रयोग समय (प्री-प्लांट या स्प्लिट अनुप्रयोग), नियंत्रित रिलीज तकनीक, स्टेबलाइजर्स और अवरोधक, और उत्पाद विकल्प BMP के उदाहरण हैं जो पोषक तत्व उपलब्धता के समय को प्रभावित करते हैं।

4. सही जगह: पोषक तत्वों को ऐसी जगह रखें जहाँ फसलें उनका उपयोग कर सकें। कुशल उर्वरक उपयोग के लिए अनुप्रयोग विधि महत्वपूर्ण है। फसल, फसल प्रणाली और मिट्टी के गुण अनुप्रयोग की सबसे उपयुक्त विधि को निर्धारित करते हैं, संरक्षण जुताई, बफर स्ट्रिप्स, कवर फसलें और सिंचाई प्रबंधन अन्य BMP हैं जो उर्वरक पोषक तत्वों को उस स्थान पर रखने में मदद करेंगे जहाँ उन्हें रखा गया था और बढ़ती फसलों के लिए सुलभ हैं।

फास्फोरस के घोल से रोपण सामग्री का उपचार:

रोपाई से पहले धान की पौध की जड़ों को एसएसपी+ जल के घोल में डुबाने से सामान्य रूप से फास्फोरस का अवशोषण 10-30 किलोग्राम/हेक्टेयर बढ़ जाता है, जिससे उपज में वृद्धि होती है। एमएपी, डीएपी या फ़िल्टर किए गए एसएसपी के 0.4% घोल का उपयोग भी फास्फोरस अवशोषण और आलू की उपज को बढ़ाता है।

कम फास्फोरस वाली मिट्टी में भिगोने का लाभकारी प्रभाव अधिकतम होता है।

अन्य तकनीकें:

अम्लीय मिट्टी में चूना डालना, अकार्बनिक फास्फोरस को विभिन्न कार्बनिक स्रोतों के साथ मिलाना आदि। इसके साथ ही फास्फोरस उर्वरकों की दक्षता को प्रभावित करने वाले कई कारक हैं जैसे:

1. मिट्टी का पीएच मान
2. फास्फोरस की मूल आपूर्ति
3. मिलाए गए फास्फोरस की मात्रा
4. नमी की स्थिति
5. उर्वरकों का प्रकार
6. मिट्टी की फास्फोरस स्थिरीकरण क्षमता।

निष्कर्ष:

अधिकांश मिट्टी के लिए, पौधों के लिए आसानी से उपलब्ध मिट्टी के पूल में फास्फोरस की मात्रा को एक महत्वपूर्ण स्तर तक बढ़ाया जाना चाहिए, ताकि फास्फोरस की कमी से उपज सीमित न हो और इष्टतम उपज प्राप्त करने के लिए आवश्यक अन्य सभी इनपुट, विशेष रूप से नाइट्रोजन का लाभ यथासंभव प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सके। अधिकांश मिट्टी के लिए, जिन्हें फास्फोरस के महत्वपूर्ण स्तर पर बनाए रखा जा सकता है, प्रत्येक वर्ष काटी गई फसल में हटाए गए फास्फोरस को बदलने से आमतौर पर संतुलन विधि द्वारा मापे जाने पर फास्फोरस दक्षता 90% से अधिक हो जाएगी। पोषक तत्वों की संतुलित खुराक (100% एनपीके) और 100% एनपीके के साथ गोबर की खाद का एकीकृत अनुप्रयोग न केवल स्थानों पर उपज को बनाए रखता है, बल्कि मिट्टी में फास्फोरस को जुटाने में भी मदद करता है और मिट्टी में फास्फोरस उपयोग दक्षता में सुधार करता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि यह कोई एक अभ्यास नहीं है जो मायने रखता है, बल्कि परिस्थितियों, हमारे उद्देश्य, चुनी गई विधियों, मिट्टी की स्थिति, मिट्टी में उक्त उर्वरकों के रासायनिक व्यवहार के आधार पर एक संघटन किया जाना चाहिए।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन

कस्तूरिकासेन बेऊरा, अमित कुमार प्रधान एवं सागर एन. इंगले

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग बिहार कृषि विश्वविद्यालय, साबौर

मृदा में लगातार अधिक रासायनिक खादों के उपयोग करने के फलसवरूप फसलों की उत्पादकता में गिरावट, मानव जीवन में रोगो की बढ़ोत्तरी, मृदा में जीवांश पदार्थ की मात्रा मे कमी होने के साथ साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता मे कमी एवं रासायनिक खादों के बहुतायत प्रयोग से पर्यावरण पर प्रभाव देखने को मिल रहा है। मृदा मे असंतुलित मात्रा मे रासायनिक खादों के उपयोग करने से जिंक, सल्फर, आयरन, बोरॉन, मालिब्डेनम जैसे सूक्ष्म तत्वों की कमी आम हो गई जिसके कारण फसलों में अनेक रोग पैदा हो रहे हैं। आज स्थिति ये है कि रासायनिक उर्वरकों के भरपूर प्रयोग के बावजूद वांछित पैदावार नहीं मिल रही है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए फसलों में समेकित पोषक तत्वों का प्रबंधन करना अति आवश्यक हो गया है जिससे हम उर्वरकता एवं उत्पादकता बढ़ा सकते है।

शुरुआत में प्रमुख पोषक तत्वों में केवल नत्रजन उर्वरकों का प्रयोग हुआ लेकिन धीरे-धीरे फास्फेटिक एवं पोटेशिक उर्वरकों के महत्व को समझते हुए इनका प्रयोग भी होने लगा । परन्तु अन्य आवश्यक पोषक तत्वों यथा मैग्नीशियम, सल्फर, जिंक, आयरन, कापर, मैंग्नीज, मालिब्डेनम तथा बोरान एवं क्लोरीन की मिट्टी में कमी होती रही, फलस्वरूप इन तत्वों की पौधों को आवश्यकतानुसार उपलब्धता न होने से अधिकांश क्षेत्रों में उत्पादन में ठहराव आ गया तथा उत्पादन में कमी भी देखी गयी। मृदा के जीवांश में हो रहे लगातार कमी से मृदा में भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में इस प्रकार परिवर्तन हुआ कि देश की बढ़ती आबादी के सापेक्ष खाद्यान्नोत्पादन पर प्रश्न चिन्ह लग गया।

समेकित पोषक तत्व प्रबंधन प्राचीन प्रणाली है जिसका महत्व हरित क्रान्ति पूर्व समय में समकालीन जीवन निर्वाह खेती के कारण पहचाना नहीं गया। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन का लक्ष्य पादप पोषकों के सभी प्रमुख स्रोतों का समाकलित रूप में कुशल और आवश्यकतानुसार उपयोग है जिससे मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ताओं पर हानिकारक प्रभाव डाले बिना अधिकतम आर्थिक लाभ पाया जा सके। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन सिद्धांत आधारीत संकल्पना का अर्थ लम्बे समय तक टिकाऊ फसल उत्पादकता के लिए मृदा उर्वरता को बनाए रखना और यदि हो सके, तो सुधार लाना है। समेकित पोषण आपूर्ति प्रणाली के प्रमुख उर्वरक, गोबर खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद, फसल अवशेष पुनः उपयोग किए जा सकने वाले अवशिष्ट और जैव उर्वरक हैं। उन घटकों में रासायनिक और भौतिक गुणों, पोषक पदार्थ की क्षमता, स्थानिय उपलब्धता, फसल विशिष्टता एवं फार्म स्वीकृति संबंधी बहुत विविधताएं हैं।

पौधों में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए मृदा में संतुलित पोषक तत्वों का प्रबंधन करना अति आवश्यक हो गया है क्योकि किसान अधिक उत्पादन के लिए अधिक रासायनिक खाद का उपयोग करता है जिससे मृदा का स्वास्थ खराब होता जा रहा है जो एक चिंता का विषय हैं और अब हमें मृदा के प्रति सजक हो कर, मृदा में संतुलित पोषक तत्वों का प्रबंधन करके पौधों में पोषक तत्वों को सुनिश्चित किया जा सकता है। पोषक तत्वों की पूर्ति सभी उपलब्ध संसाधनों के समन्वय के द्वारा किया जा सकता है। इस बात को समझना आवश्यक है कि किसी एक पोषक तत्व की पूरी मात्रा की पूर्ति केवल एक उर्वरक द्वारा नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के लिए नत्रजन तत्व की पूर्ति केवल यूरिया डालकर भी की जा सकती है, किन्तु ऐसा करने से मृदा के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। धीरे – धीरे मृदा की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है इसलिए मृदा की उत्पादन क्षमता को बढ़ाना है तो फसल की पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए हमें कार्बनिक अकार्बनिक तथा जैव संसाधनों को तर्क संगत तरीके से उपयोग में लाना होता है।

आवश्यक पोषक तत्व

फसलों के सम्पूर्ण विकास के लिए कुल 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इनमे से तीन पोषक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन हवा तथा जल से प्राप्त होते है तथा अन्य पोषक तत्व यथा नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश कैल्शियम, मैग्नेशियम, सल्फर, आयरन, मैगनीज, जिंक, कॉपर, बोरान, मोलिब्डेनम व निकिल पौधे मृदा से प्राप्त कर लेते है । अत: मृदा में इन सभी पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होनी चाहिए। इन पोषक तत्वों में से यदि एक भी पोषक तत्व की कमी या अधिकता हो जाये तो भूमि में फसलों की खुराक असंतुलित हो जाती है। इसलिए इन सभी आवश्यक पोषक तत्वों के समानुपातिक मात्रा को बनाये रखने के लिए मृदा में खाद एवं उर्वरक डालने की जरूरत पड़ती है। इस प्रकार मृदा में पोषक तत्वों की आपूर्ति कर खुराक को संतुलित किया जाता है।

पोषक तत्व प्रबन्धन का मूल सिद्धान्त

मृदा में पोषक तत्वों का संतुलन इस प्रकार किया जाय कि पौधे में मांग एवं आवश्यकता के अनुसार आवश्यक पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें, जिससे अधिक से अधिक (वांछित) उपज मिल सके और मृदा स्वस्थ्य सुरक्षित बना रहे। इसके लिए आवश्यकतानुसार अकार्बनिक एवं कार्बनिक स्रोतो से फसल को सभी तत्वों का निश्चित अनुपात में ग्रहण करना आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक तत्व का पौधों के अन्दर अलग-अलग कार्य एवं महत्व है जो पौधो के विभिन्न अवस्थाओं में पूर्ण होता है। कोई एक तत्व दूसरे तत्व का पूरक नहीं है। यह संतुलन बिगड़ने पर उत्पादन सीधे प्रभावित होता है। इस व्यवस्था/ तकनीकी को समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन की संज्ञा दी गई है।

समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन के मुख्य घटक

1. रसायनिक खाद
2. जैव उर्वरक (बायो फर्टिलाइजर्स)
3. फसल अवशेष
4. जीवाणु खाद
5. हरी खाद

रसायनिक खाद

पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु मुख्य रूप से उपयोग में आने वाले रसायनिक खाद निम्नलिखित इस प्रकार से है। यूरिया, केन (C. A. N.), अमोनियम सल्फेट, अमोनियम फॉस्फेट सल्फेट, एसएसपी, डीएपी, नाइट्रोफॉस, एमओपी, एनपीके, पोटेशियम सल्फेट, जिंक सल्फेट हेप्टा हाइड्रेट, जिंक चिलेट, फेरस सल्फेट, कॉपर सल्फेट, बोरेक्स

जैव उर्वरक (बायोफर्टिलाइजर्स)

जैव उर्वरकों का फसलों में उपयोग मुख्यता कल्चर के रूप में बीज उपचार कर के किया जाता है जो निम्लिखित इस प्रकार है।

राइजोबियम- दलहन एवं तिलहन फसलों जैसे सोयाबीन, मूंगफली, चना, मटर, मूंग, उड़द, मसूर में राइजोबियम के प्रयोग से पैदावार में 10-25 प्रतिशत की वृद्धि की जा सकती है। राइजोबियम की अनुक्रिया को मृदा दशा, मृदा उर्वरकता, टीके की गुणवत्ता आदि कारक प्रभावित करते हैं। दलहन फसलों में राइजोबियम

दलहन सहजीवन दलहन फसल की 80 प्रतिशत नत्रजन आवश्यकता पूरी कर सकता है। साधारणतः एक एकड़ क्षेत्रफल के लिए एक पैकेट राइजोबियम कल्चर की आवश्यकता होती है। नत्रजन तत्व की पूर्ति हेतु राइजोबियम कल्चर को मुख्यत: दलहनी फसलों के लिए प्रयोग करते है। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 200 ग्राम के तीन पैकेट से बीज उपचारित करना चाहिए।

एजोटोबैक्टर- एजोटोबैक्टर केला, पपीता, आलू, प्याज, टमाटर, भिण्डी, गन्ना, कपास, तंबाकू, मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूं, धान आदि फसलों में प्रयोग किया जाता है। एजोटोबैक्टर स्वतंत्र रूप से पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं। एजोटोबैक्टर नत्रजन स्थिरीकरण के अतिरिक्त इन्डोल एसिटिक एसिड, जिब्रेलिक एसिड तथा विटामिन भी उत्पन्न करते हैं। एजोटोबैक्टर के उपयोग से उर्वरक तुल्यांकों के संदर्भ में विभिन्न फसलों को 15-20 किग्रा प्रति हेक्टेयर मिलती है।

एजोस्पीरिलम- धान, गन्ना, मोटे अनाज, कपास, कद्दूवर्गीय एवं उद्यानिकी फसलों में इसका प्रयोग किया जाता है। एजोस्पीरिलम पादप जड़ों के साथ मुक्त संबंध में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है। इसके प्रयोग से फसलों में 10-15 प्रतिशत तक की उपज में वृद्धि होती है। राइजोबियम की अपेक्षा एजोस्पीरिलम के प्रति फसल अनुक्रियाओं में समरूपता नहीं पाई गई तथा एजोस्पीरिलम के प्रति फसलों और उनकी किस्मों, स्थान, मौसम, फसल प्रबंधन पद्धतियों, जीवाणु विभेदों, और मृदा उर्वरकता का प्रभाव पड़ा।

एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पिरिलम कल्चर: बिना दाल वाली सभी फसलों के लिए उपरोक्तानुसार काम में लेना चाहिए। रोपाई वाली फसलों के लिए 10 लीटर पानी में दो पैकेट कल्चर घोल में 15 मिनट पौधों की जड़ों को डुबोकर रोपाई करना लाभकारी सिद्ध हुवा है।

नील हरित शैवाल- नील हरित शैवाल धान के लिए एक महत्वपूर्ण जैव उर्वरक है। यह एक विशेष प्रकार की काई (एलगी) होती है। इसकी विभिन्न प्रजातियां पायी जाती है जिनमें नॉस्टाक, एनाबिना, एलोश्रिक्स, साइट्रोनिया आदि प्रमुख हैं। नत्रजन स्थिरीकरण केवल उन्हीं शैवालों द्वारा किया जाता है जिनमें एक विशेष प्रकार की कोशिका (हेट्रोसिस्ट) होती है। इस प्रकार के शैवाल वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण तो करते ही है, साथ-साथ अनेक प्रकार के लाभकारी एवं आवश्यक रासायनिक पदार्थ जैसे विटामिन, वृद्धि नियामक, अमीनो अम्ल इत्यादि भी अवमुक्त करते हैं।

फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने हेतु पीएसबी कल्चर: रसायनिक उर्वरकों द्वारा दिए गए फॉस्फोरस का बहुत बड़ा भाग मृदा में अघुलनशील अवस्था में होकर फसलों को मिल नहीं पाता है। पीएसबी कल्चर अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध करता है। बीजोपचार उपरोक्तानुसार करें या 2 किलोग्राम (10 पैकेट्स) कल्चर को 100 किलोग्राम गोबर की खाद में मिलाकर खेत में मिला दें।

जैव उर्वरकों के लाभ

1. जैव उर्वरक पौधों के लिए आवश्यक सभी प्रमुख एवं सूक्ष्म पोषक तत्व प्रदान करते हैं।
2. इनके प्रयोग से मृदा में लाभकारी जीवाणुओं व केंचुओं की संख्या में वृद्धि होती है।
3. भूमि में स्थिर अघुलनशील फास्फोरस जीवाणुओं की सक्रियता से घुलनशील रूप में परिवर्तित होकर पौधों के लिए प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।
4. इनके उपयोग से पौधों के लिए आवश्यक अनेक पादप वृद्धि नियामक भी मिलते हैं।
5. जैव उर्वरक रासायनिक उर्वरकों की तुलना में कम समय और कम खर्च में तैयार हो जाते हैं।
6. जैव उर्वरकों का प्रभाव धीरे-धीरे होता है परंतु मृदा उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है। जिससे इसे रासायनिक उर्वरकों की तरह बार-बार नहीं डालना पड़ता है।

7. जैव उर्वरकों के प्रयोग से न सिर्फ रासायनिक उर्वरकों की खपत में कमी होती है बल्कि रासायनिक उर्वरकों की उपयोग क्षमता भी बढ़ती है।
8. जैव उर्वरकों का प्रयोग मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से सर्वोत्तम है जो टिकाऊ खेती के महत्वपूर्ण कारक हैं।

जैव उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियां

1. जैव उर्वरक के पैकेट पर लिखे दिशा-निर्देश का पालन अवश्य करें।
2. पैकेट पर लिखी अंतिम तिथि से पहले प्रयोग करें।
3. जैव उर्वरक ठंडे व सूखे स्थान पर रखें।
4. प्रत्येक दलहनी फसल के लिए राइजोबियम की प्रजाति भिन्न होती है, अत: इंनका प्रयोग भी भिन्न होता है, इसलिए इसका प्रयोग फसलवार करना चाहिए।
5. प्रत्येक दलहनी फसल के लिए राइजोबियम की प्रजाति भिन्न-भिन्न होती है। अतः इनका प्रयोग फसलवार करना चाहिए।
6. जीवाणु कल्चर से शोधित बीज को कभी भी धूप में नहीं सुखाना चाहिए, इससे जीवाणु मर जाते हैं।
7. जीवाणु कल्चर के बीजशोधन के समय या उसके बाद किसी भी प्रकार के रसायन से बीज उपचार नहीं करना चाहिए। रसायन के जहरीले प्रभाव से जीवाणु मर सकते हैं। अतः यदि रसायन से बीज उपचारित करना हो तो इसे कल्चर शोधन से पहले करना चाहिए।

फसल अवशेष

फसलों के जो भी अवशेष खेत में फसल कटाई के बाद बचते है उनको खेत के किनारे गड्ढे में इखट्ठा करके जैविक खाद बनाकर खेत में उपयोग करना चाहिए इस प्रकार खाद उपयोग करने से मृदा की संचना एव मृदा में नमी की उपलब्धता रहती है

भारत में फसल अवशेषों और फार्म/औद्योगिक अवशिष्टों जैसे धान अथवा गेहूं का भूसा, धान का छिलका, गन्ने के अवशेष, आलू के डंठल, कपास अवशिष्ट, प्रेस मड़, वन का कुड़कचरा, जलकुंभी आदि के उपयोग की अपार संभावनाएं हैं। उपलब्ध अवशिष्टों का केवल एक तिहाई ही कृषि उत्पादन में उपयोग होता है।

धान्य फसल अवशेष- फसल अवशेष जैसे गेहूं के भूसे में बहुत अधिक पोषक तत्व होते हैं लेकिन मृदा में समायोजन के लिए उपलब्ध नहीं होते। उन क्षेत्रों में जहां मशीनों द्वारा गेहूं की कटाई होती है खेतों में काफी मात्रा में फसल अवशेष रह जाते हैं जो पोषक आपूर्ति के लिए पुनः चक्रित किए जा सकते हैं। धान्य फसलों द्वारा लिए गए पोषक तत्वों में औसतन 25 प्रतिशत नाइट्रोजन और फास्फोरस, 50 प्रतिशत सल्फर और 75 प्रतिशत पोटाश फसल अवशेषों में रह जाते हैं जो बहुमूल्य पोषक स्रोत हैं।

आलू के डंठल- आलू के डंठलों की वार्षिक आकलित उपज 10 मिलियन टन है। इन अवशेषों में 2.5 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है जो लगभग 30 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर के बराबर है जब उन्हें हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जाए।

गन्ने के अवशेष- गन्ने के अवशेष का प्रतिवर्ष लगभग 30-35 मिलियन टन उत्पादन होता है। अधिकतर किसान इसे जला देते हैं क्योंकि अन्य फसल अवशेषों की भांति इसका विघटन सरल नही है। उत्तर-दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में किए गए प्रक्षेत्र परीक्षणों में यह पाया गया कि 5 टन गन्ना अवशेष प्रति हेक्टेयर

नाइट्रोजन के साथ मिलाकर उपयोग करने से गन्ने की उपज में वृद्धि हुई और 75 किग्रा प्रति हेक्टेयर तक नत्रजन उर्वरक की बचत हुई। गन्ने के अवशेष से मृदा की नत्रजन की हानि में कमी आई और मृदा के कार्बनिक पदार्थ के स्तर में वृद्धि हुई।

औद्योगिक अवशिष्ट- औद्योगिक अवशिष्ट पदार्थों में चीनी मिल से प्राप्त मोलासेस एवं प्रेसमड प्रमुख हैं। दक्षिण भारत की काली मिट्टी में अन्य मिट्टियों की अपेक्षा प्रेसमड की पर्याप्त मात्रा को उर्वरकों के साथ उपयोग करने से गन्ने की अच्छी उपज मिलती है। मोदीपुरम में किए गए प्रक्षेत्र परीक्षणों में देखा गया कि प्रेसमड और नाइट्रोजन के उपयोग से धान की उपज में तो वृद्धि हुई साथ ही साथ धान-गेंहू फसल प्रणाली को अवशेष प्रभाव से लाभ हुआ

जीवाणु खाद

जीवाणु खाद का उपयोग करने से फसलों को सभी पोषक तत्वों की संतुलित मात्रा मिल जाती है। मिट्टी में लाभकारी जीवों की संख्या बढ़ जाती है। मुख्य रूप से फसलों में जैविक खाद में निम्नलिखित खादों को शामिल किया गया है जैसे- सुपर कम्पोस्ट, नाडेप कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट खलियां

वर्मी कम्पोस्ट (केंचुआ खाद)- यह भूमि की उर्वराशक्ति बनाए रखने का एक प्राकृतिक तरीका है। केंचुए मिट्टी को हवादार वातावरण करने में सहायक हैं। केंचुए फसलों के अवशेष, घास-फूस, कूड़ा, बची हुई शाक, फल-फूल आदि को खाकर वर्मी कम्पोस्ट में परिवर्तित करते हैं और अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं। वर्मी कम्पोस्ट में उपस्थित पोषक तत्व कई बातों पर निर्भर करते हैं उनमें से मुख्य हैं वर्मी कम्पोस्ट के लिए उपयोग में आने वाले फसल अवशेष की गुणवत्ता तथा उपयोग में आने वाले केंचुए की किस्म। वर्मी कम्पोस्ट से भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है तथा भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता में वृद्धि होती है।

हरी खाद

हरी खाद: हरी खाद के रूप में ढ़ैंचा, सनई, ग्वार आदि फसलों को फूल आने से पूर्व की अवस्था में खेत में दबा देते हैं और खेत में पानी भर कर सड़ा देते हैं।

हरी खाद वाली फसलें (Green Manure Crops)

1. हरी खाद (Green Manure) वाली खरीफ की फसलें लोबिया, मूंग, उड़द, ढ़ैंचा, सनई व ग्वार हरी खाद की फसल से अधिकतम कार्बनिक पदार्थ और नत्रजन प्राप्त करने के लिए एक विशेष अवस्था में उसी खेत में दबा देना चाहिए। इन फसलों को 30 से 50 दिन की अवधि में ही पलट देना चाहिए, क्योंकि इस अवधि में पौधे नरम होते है जल्दी गलते है।
2. हरी खाद के लिए रबी की फसलें बरसीम, सैंजी, मटर और चना आदि फसलों का प्रयोग किया जा सकता है और कम लागत में भूमि के लिए अच्छे कार्बनिक पदार्थ प्राप्त हो सकते है।
3. अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों या जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है उसके लिए सनई और लोबिया को उपयोग में लाना चाहिए और कम वर्षा व जल वाली भूमि के लिए ढेंचा और ग्वार को महत्व देना चाहिए। दलहनी फसलों को उस जगह उपयोग में लाए जहा पानी ना ठहरता हो। क्षारीय और समस्याग्रस्त क्षेत्रों के लिए ढेंचा और लोबिया उपयोग में लाना चाहिए।

हरी खाद के लाभ

1. हरी खाद केवल नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थों की ही आपूर्ति नही करती है बल्कि इससे भूमि को कई पोषक तत्व भी प्राप्त होते है। इसे प्राप्त होने वाले पदार्थ इस प्रकार है नाइट्रोजन, गंधक, स्फुर, पोटाश, मैग्नीशियम, कैल्शियम, तांबा, लोहा और जस्ता इत्यादि।
2. इसके उपयोग से भूमि में सूक्ष्मजीवों की संख्या और क्रियाशीलता बढ़ती है, तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति व उत्पादन क्षमता में भी बढ़ोतरी देखने को मिलती है।
3. हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी नरम होती है, हवा का संचार होता है, जल धारण क्षमता में वृद्धि, खट्टापन व लवणता में सुधार तथा मिट्टी क्षय में भी सुधार आता है।
4. भूमि को हरी खाद से मृदा जनित रोगों से भी छुटकारा मिलता है।
5. किसानों के लिए कम लागत में अधिक फायदा हो सकता है, स्वास्थ और पर्यावरण में भी सुधार होता है।

उपयोग कैसे करे

1. जिस मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम है वहा हरी खाद की दलहनी फसल को कम समय में अधिक बढवार के लिए 25 से 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नत्रजन और गैर दलहनी के लिए 45 से 50 किलोग्राम नत्रजन बुआई के समय डालने से काफी लाभ हो सकता है। और उचित नमी के साथ इस फसल को छिडक कर बो दिया जाता है।
2. हरी फसल को बुआई से 35 से 55 दिन की अवस्था में मिट्टी पलटने वाले हल से 15 से 25 सेंटीमीटर गहराई तक पलट देना चाहिए। अगर आप इसको समय से पहले पलटेगे तो कार्बनिक पदार्थ मिट्टी को प्राप्त नही होंगे और देर से पलटेंगे तो रेशा मजबूत होने से जल्दी गलने सड़ने में समस्या हो सकती है। इसलिए इसको सही समय पर पलटे। अधिक वर्षा या तापमान के साथ यह जल्दी गल सड़ जाती है।

तो इन सब प्रक्रियाओं के द्वारा आप हरी खाद को अधिक पैदावार के लिए और मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए प्रयोग में ला सकते है और यह आप की फसल के लिए भी बेहतर है, कम लागत में इसके द्वारा अधिक मुनाफा लिया जा सकता है।

समेकित तत्व प्रबन्धन का महत्व

मृदा की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य बनाये रखना।

पोषक तत्वों का संतुलन मृदा में बनाये रखना।

अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना।

विषैलापन का प्रभाव कम करना तथा प्रतिक्रियाओं से बचाना।

गुणात्मक उत्पादन एवं वातावरण की विपरीत परिस्थितियों से बचाव।

1. लाभ/लागत अनुपात में वृद्धि।

समेकित पोषक तत्व प्रबन्धन हेतु कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

1. मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करें।
2. रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ कार्बनिक खाद, जैविक उर्वरकों का भी प्रयोग करें।
3. फास्फोरस उर्वरक को बुवाई के समय कूढ़ में डालें।
4. सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकतानुसार पूर्ति करें।
5. दलहनी फसलों के बीजों को राइजोबियम कल्चर से अवश्य उपचारित करें।
6. दलहनी फसल के बाद उगायी जाने वाली फसल में नाइट्रोजन की मात्रा में 15-20 प्रतिशत की कटौती करें।
7. जहां तक संभव हो सके फसल चक्र में एक दलहनी फसल अवश्य लें।
8. फसल उत्पादन की उन्नत प्रौद्योगिकी जैसे उचित फसल व प्रजाति का चयन, प्रमाणित बीज का प्रयोग, समय पर बुवाई, संस्तुत बीज दर, लाइनों में बुवाई, समुचित जल प्रबंध, खरपतवार व रोग प्रबंधन अपनाएं।

निष्कर्ष-

फसलों में समेकित पोषक तत्व प्रबंधन से संतुलित पोषक तत्वों (अकार्बनिक एवं कार्बनिक खादे) का खेत में उपयोग करने से उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ को बढ़ाया जा सकता है जो खेती को टिकाऊ बनाने में भी उपयोगी है ।

भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान

नबीबाग, बैरसिया रोड, भोपाल- 462 038 (म.प्र.)

(आईएसओ 9001- 2015 प्रमाणित)

Visit us : iiss.icar.gov.in www.facebook.com/IndianInstituteofSoilScience
www.youtube.com/channel/UCHMNOIJwvONVWcjyOFGZeEw